अंक : ११२

अक्तूबर-दिसंबर २०१०

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

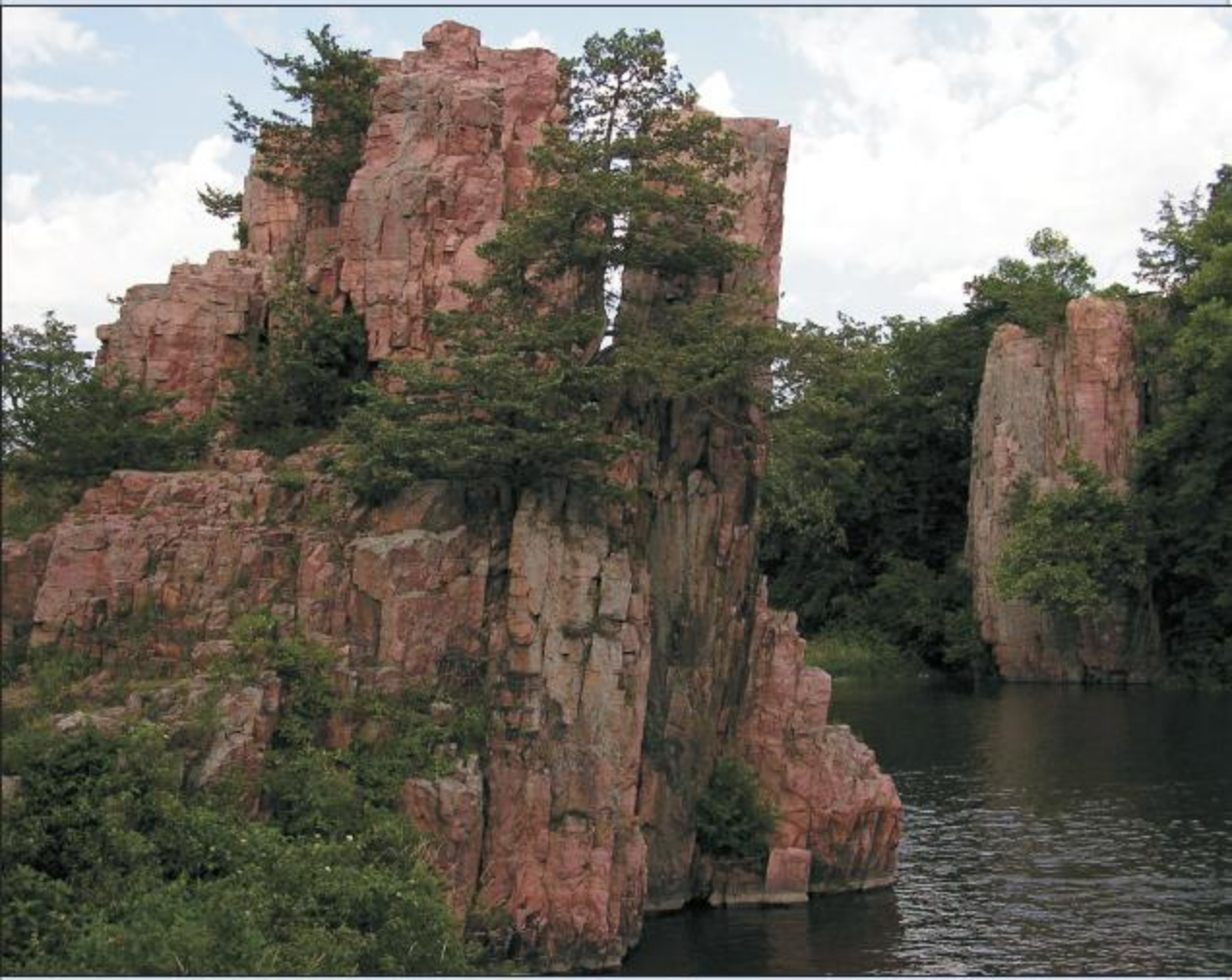

कहानियां

डॉ. अनुज प्रभात, डॉ. सतीश दुबे, रमेश यादव,
डॉ. इला प्रसाद, डॉ. निरुपमा राय

सागर-सीपी

गोपाल दास

१५ रूपये

अक्तूबर-दिसंबर २०१०

(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"

संपादिका
मंजुश्री

संपादन सहयोग
प्रबोध कुमार गोविल
जय प्रकाश त्रिपाठी
अश्विनी कुमार मिश्र
हम्माद अहमद ख़ान

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

●सदस्यता शुल्क●
आजीवन : ५०० रु., **त्रैवार्षिक** : १२५ रु.,
वार्षिक : ५० रु.,
(वार्षिक शुल्क ५ रु. के डाक टिकटों के
रूप में भी स्वीकार्य है)
कृपया सदस्यता शुल्क
चैक (कमीशन जोड़कर),
मनीऑर्डर, डिमांड ड्राफ्ट द्वारा
केवल **"कथाबिंब"** के नाम ही भेजें.

●रचनाएं व शुल्क भेजने का पता●
ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई-४०० ०८८.
फोन : २५५१ ५५४१, ९८१९१६२६४८

● **न्यूयॉर्क संपर्क** ●
Naresh Mittal, Gerard Pharmacy,
903 Gerard Avenue, Bronx NY 10452
Tel : 718-293-2285, 845-304-2414 (M)

●**"कथाबिंब" वेबसाइट पर उपलब्ध**●
www.kathabimb.com

e-mail : kathabimb@yahoo.com
(कृपया रचनाएं भेजने के लिए ई-मेल का प्रयोग न करें.)

एक प्रति का मूल्य : १५ रु.
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु
१५ रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें.
(सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ)

क्रम

कहानियां

।। ७ ।। नील पाखी / **डॉ. अनुज प्रभात**
।। ११ ।। एक परिचय, अंतहीन / **डॉ. सतीश दुबे**
।। १९ ।। कर्जा-वसूली / **रमेश यादव**
।। २३ ।। "जन्म दिन मुबारक !" / **डॉ. इला प्रसाद**
।। २८ ।। पांचवी कथा / **डॉ. निरुपमा राय**

लघुकथाएं

।। १० ।। "प्लीज़ सेव मी !" / **पूरन सिंह**
।। ४७ ।। बूढ़ी घोड़ी... / **मंगला रामचंद्रन**
।। ४७ ।। दुविधा / **ज्ञानदेव मुकेश**
।। ४७ ।। आदत / **किशन लाल शर्मा**

दोहे / ग़ज़लें / कविताएं

।। १८ ।। दोहे / **गोपाल दास "नीरज"**
।। २२ ।। नव सृजन के लिए / **डॉ. नीरज वर्मा**
।। २७ ।। ग़ज़लें / **मदन मोहन शर्मा "अरविंद"**
।। ३२ ।। ग़ज़लें / **नीरज गोस्वामी**
।। ४० ।। कही-अनकही / **अल्पना सिंह**

स्तंभ

।। २ ।। "कुछ कही, कुछ अनकही"
।। ४ ।। लेटर बॉक्स
।। ३३ ।। "सागर-सीपी" / **गोपाल दास**
।। ४१ ।। "बाइस्कोप"(*सविता बजाज*) / **इम्तेयाज़ हुसैन**
।। ४३ ।। पुस्तक-समीक्षाएं
।। ४८ ।। परिशिष्ट

आवरण चित्र : **नमित सक्सेना (न्यूयॉर्क)**

"कथाबिंब" मुंबई की "संस्कृति संरक्षण संस्था" के सौजन्य से प्रकाशित होती है.

कुछ कही, कुछ अनकही

इस अंक के साथ **"कथाबिंब"** के प्रकाशन का एक और वर्ष पूरा हुआ. अंक-दर-अंक यह एक ऐसी हर्डिल (बाधा) रेस है जिसे दौड़ना ही है. इससे कोई निष्पत्ति नहीं है. ख़ैर अब तो आदत-सी पड़ गयी है, गर बाधाएं न हों तो दौड़ का आनंद ही क्या. आप कोई भी काम करें, प्रारंभ करने से पहले वह बहुत मुश्किल लग सकता है किंतु यदि आपने काम को छोटे-छोटे टुकड़ों में बांट लिया और हर खंड की प्राथमिकताएं तय कर लीं तो काम आसान हो जाता है. हमारा हमेशा से यही कहना है कि काम आरंभ करने पर उसे आधा हुआ समझ लेना चाहिए और जब वह आधा हो जाये तो समझ लो वह पूरा हो गया. शायद अंग्रेजी के एक मुहावरे का भी कुछ-कुछ यही आशय है. बहरहाल!

हमें खेद है कि इस अंक में स्थानाभाव के कारण **"आमने-सामने"** स्तंभ की सामग्री नहीं जा पायी है. अंक में, परिशिष्ठ के तौर पर **"संस्कृति संरक्षण संस्था"** द्वारा कुछ दिन पूर्व आयोजित ऑन द स्पॉट *"काव्य-सृजन प्रतियोगिता"* की कुछ चुनिंदा कविताएं प्रकाशित की जा रही हैं. इस वर्ष स्थानीय स्कूलों के लगभग ८० विद्यार्थियों ने प्रतियोगिता में भाग लिया. यह प्रतियोगिता संस्था प्रतिवर्ष सितंबर में आयोजित करती है. एक दिवसीय संगोष्ठियों की श्रृंखला में संस्था १२ मार्च २०११ को *"भारतीय शिक्षा का वर्तमान स्वरूप एवं परिवर्तन की दिशा"* विषय पर संगोष्ठी आयोजित कर रही है. संगोष्ठी में भाग लेने के इच्छुक स्थानीय व्यक्ति फ़ोन पर संपर्क कर सकते हैं.

●

अब कुछ इस अंक की कहानियों के बारे में – पहली कहानी *"नील पाखी"* (डॉ. अनुज प्रभात) एक कतिपय नये लेखक की कहानी है. छोटे शहरों में आज भी कुछ संयुक्त परिवार बच गये हैं. एक ओर जहां साथ में रहने के अनेक लाभ हैं वहीं कुछ दिक्कतें भी पेश आती हैं. कभी-कभी तानों-तिश्नों के कारण कोई परिवार अलग होने की कगार पर आ जाता है. लेकिन फिर कुछ ऐसा घटता है कि सब सामान्य हो जाता है. डॉ. सतीश दुबे **"कथाबिंब"** के नियमित लेखक हैं. अपनी कहानी *"एक परिचय, अंतहीन"* में बड़ी बारीकी से घर से दूर, होस्टल में रहने वाले विद्यार्थियों की परेशानियों को आपने प्रस्तुत किया है. किसी तरह अपने परिवार का नाम रौशन करें, विद्यार्थियों के समक्ष एकमात्र यही उद्देश्य रहता है. अगली कहानी *"कर्जा-वसूली"* के लेखक रमेश यादव पत्रकार, नाटककार तथा अनुवादक हैं. प्रस्तुत कहानी एक ऐसे बैंक अधिकारी की कहानी है जिसने कर्जा वसूलने का अपना टारगेट पूर्ण अवश्य किया है किंतु वास्तविक श्रेय का अधिकारी कोई और ही है. अगली कहानी की लेखिका डॉ. इला प्रसाद अमरीका प्रवासी हैं. आप साहित्य की कई विधाओं में सृजनरत हैं. *"जन्मदिन मुबारक!"* अपना आसमान, अपनी ज़मीन ढूंढ़ने में लगे भारतीय प्रवासियों की कहानी है. भारत से अमरीका गये अनेक लोगों के लिए, शुरू में एक-एक डॉलर दांत से पकड़ना ज़रूरी हो जाता है. इस आशा से कि आगे का जीवन सुविधा-संपन्न होगा. इसी ऊहापोह में जीवन कहीं पीछे छूटने लगता है. सब कुछ बहुत ही सापेक्ष है. यह तय करना आवश्यक हो जाता है कि अंततः हमें क्या चाहिए.*"पांचवी कथा"* अंक की पांचवी कहानी है. लेखिका डॉ. निरुपमा राय का नाम **"कथाबिंब"** के पाठकों के लिए नया नहीं है. चाहे अमीर हो या ग़रीब किसी के घर-परिवार में लड़की का जन्म शुभ नहीं माना जाता. इस सोच के पीछे अनेक पहलू हैं. लेखिका ने बड़े ही मार्मिक ढंग से कुछ अनछुये तथ्य अपनी कहानी में उजागर किये हैं.

●

इधर देश का राजनीतिक परिदृश्य बहुत तेज़ी से बदल रहा है. दूसरी बार सत्ता में आयी "संप्रग" (यू पी ए) के नियंत्रण में आज कुछ भी नहीं है. जनता को यह कतई पता नहीं है कि कहां जा कर गुहार लगाये. नक्कार खाने में आम आदमी की आवाज़ महज तूती की आवाज़ बन कर रह गयी है. हर दिन एक नया स्कैंडल या घोटाला उजागर हो रहा है. कॉमनवेल्थ खेलों की तैयारी को लेकर अफरा-तफरी थी कि अगर खेल संपन्न नहीं हो पाये तो कितनी छीछालेदर होगी! यहां तक कि महामना प्रधानमंत्री को हस्तक्षेप करना पड़ा. राम-राम करके इज़्ज़त बच पायी. कैसे खर्चा बजट से दुगना-तिगुना हो गया ? अब सुरेश कलमाडी अपनी पगड़ी बचाने में लगे हुए हैं. मामला सालों-साल लंबित रहेगा. ओबामा की भारत यात्रा के पूर्व मुंबई की आदर्श कोऑपरेटिव सोसायटी का घोटाला सामने आया. यात्रा के दौरान ओबामा को मुंबई आना था. कुछ दिनों के लिए महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री अशोक चव्हाण को जीवनदान मिल गया. लेकिन ओबामा के जाते ही चव्हाण साहब की छुट्टी कर दी गयी. अब जांच जारी है. फिर आया टेलीकॉम का २जी स्पेक्ट्रम घोटाला. सुब्रह्मण्यम स्वामी ने इस संबंध में दो साल पहले प्रधानमंत्री को लिखा था. कोई सुनवाई नहीं हुई. "कैग" ने कहा कि मंत्री राजा द्वारा एलॉटमेंट का ग़लत तरीका अपनाने से देश को १७ हज़ार करोड़ का नुकसान हुआ है. सभी विपक्षीय दलों द्वारा संयुक्त संसदीय समिति की मांग के कारण संसद का शीतकालीन सत्र ठप्प रहा. अंततः राजा को गद्दी छोड़नी पड़ी. अब वे जेल में आराम

फरमा रहे हैं. सरकार सीबीआई जानकारी पर जोर दे रही है जबकि विपक्ष अपनी मांग पर टिका हुआ है. नये मंत्री कपिल सिब्बल ने कह दिया कि एलॉटमेंट में कहीं कोई गड़बड़ नहीं हुई है, किसी प्रकार का नुकसान नहीं हुआ है. ऐसे में जनता क्या समझे. जांच चाहे संसदीय समिति करे, अन्य कोई समिति करे या सीबीआई, तहकीकात सालों-साल चलेगी जैसा बोफोर्स में हुआ. क्वोत्रोची को क्लीन चिट देकर भारत से जाने दिया गया. अब क्या फर्क पड़ता है, आप बैठे हाथ मलते रहिए. सीधी सी बात है आपके कनेक्शन गर ऊपर तक हैं तो आपका कोई भी बाल बांका नहीं कर सकता. नीरा राडिया के फोन टेप्स से नये-नये तथ्य सामने आ रहे हैं. कैसे बड़े-बड़े कॉर्पोरेट हाउस और मीडिया वाले कौन-सा मंत्रीपद किसको मिले यह भी आपस में तय करते हैं. नीरा राडिया दो-तीन सालों में ३०० करोड़ की मालकिन कैसे बन बैठी ? आप दिखावे के लिए लाख छापे डालते रहिए. सीबीआई जांच के आदेश दे दीजिए. नकेल तो आपके ही हाथ में रहेगी.

भ्रष्टाचार नित नयी ऊंचाइयां छू रहा है. महंगाई पर कोई अंकुश नहीं है. कभी दाल, कभी प्याज, टमाटर बाज़ार से ग़ायब हो जाते हैं. कृषि व खाद्यमंत्री शरद पवार जी का बयान आता है कि महंगाई रोकना उनका काम नहीं है. ऐसे बयानों से जमाखोरों को और बढ़ावा मिलता है. उधर गृहमंत्री कहते हैं कि हमें भगवान का शुक्रिया अदा करना चाहिए कि त्यौहारों के दौरान आतंकवाद की कोई बड़ी घटना नहीं हुई. बहुत दिनों से ख़बरें आ रही थीं कि मंत्रीमंडल का विस्तार होगा, सरकार को एक नयी छवि मिलेगी. अच्छी छवि वाले प्रधानमंत्री व त्यागमूर्ति सोनिया गांधी के मध्य कई बैठकों के बाद जो कॉस्मेटिक हेर-फेर किये गये वे सबके सामने हैं. विलास राव देशमुख जिन्हें २६/११ को मुंबई में हुए हमले के बाद बरखास्त कर दिया गया था और जिनको उच्चतम न्यायालय ने नामजद किया है उन्हें पुरस्कृत करके ग्रामीण विकास मंत्री बनाकर विदर्भ के किसानों के जख़्मों पर नमक छिड़कने का काम किया गया है. आदर्श घोटाले में भी देशमुख साहब का नाम आया है. विदर्भ में एक कृषक ने एक कॉन्ग्रेस एम एल ए के पिता के विरुद्ध एफ आई आर लिखवायी थी. यह व्यक्ति ३६ प्रतिशत पर किसानों को ऋण देता था. देशमुख के कहने पर केस खारिज कर दिया गया.

चाहे आतंकवाद का मुद्दा हो या नक्सलवाद हो, आंतरिक सुरक्षा के मुद्दे पर सरकार पूरी तरह विफल हुई है. केंद्रीय सरकार से लोगों का भरोसा बहुत तेज़ी से उठता जा रहा है. चलते-चलते ख़बर आयी है मुंबई हमले में शहीद हुए कमांडो उन्नीकृष्णन के चाचा की दिल्ली के एक अस्पताल में मृत्यु हो गयी. अपनी हताशा, कि सरकार ने तीन साल में कुछ नहीं किया को जगजाहिर करने के लिए चाचा मोहनन ने दिल्ली के विजय चौक पर आत्मदाह किया, सारा प्रशासन व मीडिया देखता रहा. किसी ने कुछ नहीं किया. मोहनन विजय चौक पर शहीद हो गये. इससे बढ़कर विडंबना और क्या हो सकती है. कुछ दिन पूर्व नासिक में तेल माफिया के लोगों ने यशवंत सोनावने को दिन-दहाड़े जला दिया. तुरंत २५ लाख रु. के मुआवजे की घोषणा की गयी. सरकार सजग है यह दिखाने के लिए अनेक जगह छापे मारे गये. कुछ दिनों बाद सब ठंडा पड़ जायेगा. फिर सब कुछ ज्यों का त्यों. जनता का आक्रोश उबाल पर है. जरा-जरा सी बात पर आये दिन, बसों, ट्रकों, ट्रेनों में आग लगा दी जाती है. सरकार जनता की आकांक्षाएं, अपेक्षाओं पर अगर ध्यान नहीं देगी और आम आदमी से विमुख हो जायेगी तब इस तरह की घटनाएं बढ़ती जायेंगी. आये दिन राजधानी दिल्ली में लूट-खसोट, चोरी-डकैती, झीना-झपटी की वारदातें हो रही हैं. यहां तक कि दिल्ली को "अपराध की राजधानी" कहा जाने लगा है. आज "भगवा आतंकवाद" को बड़े जोर-शोर से उछाला जा रहा है. पिछले ६० सालों में आतंकवाद की अनेकों घटनाएं हुई हैं, न मीडिया ने, न सरकारी नुमाइंदों ने इसे "हरा आतंकवाद" कहा. हिंदुओं का सहिष्णु होना भारतवर्ष की सबसे बड़ी शक्ति है. लेकिन हर किसी की धैर्य की सीमा होती है. देश का प्रधानमंत्री कहता है कि देश के संसाधनों पर पहला अधिकार मुसलमानों का है, आस्ट्रेलिया में एक भारतीय मुसलमान को जेल में रखा जाने पर मनमोहन सिंह को रात में नींद नहीं आती, अफ़जल गुरू की फांसी का निर्णय ठंडे बस्ते में डाल दिया जाता है, कसाब की मेहमान-नवाजी में कोई कमी नहीं रखी तो कुछ "भटके हुए हिंदू" अगर हथियार उठा लें तो इसमें हमें आश्चर्य नहीं करना चाहिए.

●

हर बात को लेकर हमारे दोहरे मापदंड हैं. अरुंधती राय भाषण में कहती हैं कि कश्मीर भारत का हिस्सा नहीं है, उसे अलग कर देना चाहिए. सरकार कोई कार्यवाही नहीं करती. बिनायक सेन पर मुकदमा चलता है और उसे आजीवन कारावास का फैसला सुनाया है. तुरंत सारा मीडिया, देसी व विदेशी मानवाधिकारी, बुद्धिजीवी यह प्रमाणित करने में जुट जाते हैं कि बिनायक सेन दूध के धुले हैं. इसकी तुलना में नरेंद्र मोदी को केंद्र द्वारा गठित "सिट" अपनी अंतरिम रपट में २००२ के दंगों का दोषी नहीं पाती. तो तुर्रा यह कि गोधरा कांड के बाद मोदी तुरंत वहां पहुंचे थे किंतु बाद के दंगों में बेस्ट बेकरी या अन्य स्थानों पर क्यों नहीं गये, इस कारण वे दोषी हैं ! अट्ट भी मेरी, पट्ट भी मेरी ...

अरविंद

लेटर बॉक्स

❖ 'कथाबिंब' पत्रिका मैं बरसों से नियमित पढ़ भी रही हूं और देख भी रही हूं. आपके द्वारा चयनित कहानियां मार्मिक, संवेदनशील और विशेष होती हैं. जो केवल आधुनिकता के बहाव में नहीं बहतीं. आज के मनुष्य और समाज तथा उसके ह्रदय की बात कहती हैं. ज्वलंत समस्याओं से भरी इन कहानियों को मैं सदैव पसंद करती हूं और पढ़ती भी हूं. कथाबिंब को आप अच्छे से अच्छा बनाने का प्रयत्न भी करते रहते हैं. मेरी बहुत-बहुत बधाई लें.

उर्मि कृष्ण

✉ ए-४७, शास्त्री कॉलोनी,
अंबाला छावनी-१३३००१

❖ 'कथाबिंब' अंक १११ मिला. करीब एक दशक बाद फिर पत्रिका देखने, पढ़ने का सुअवसर मिला. १९७९ से पत्रिका का अनवरत प्रकाशन और वर्तमान में इसकी प्रस्तुति में पहले की तरह वही सशक्त रचनाओं का समावेश. संपादकीय में आपने पत्रिका के अतीत से शुरुआत कर, अंक में प्रकाशित कहानियों पर स्वयं टिप्पणी कर अंत में टी.वी. के कारण बदलते परिवेश का सही चित्रण किया है.

अंक की कहानियों में डॉ. सुधा ओम ढींगरा की 'फंदा क्यों?' मन पर प्रभाव छोड़ती है. विदेशों में यहां से गये लोगों की मनःस्थिति एवं हालात का सही चित्रण था कहानी में. चंद्रमोहन प्रधान की कहानी, 'पिताजी!... चिंता न करें.' बहुत अच्छी, बहुत प्रेरक रचना थी. सुरेंद्र अंचल ने अपनी कहानी 'चूल्हे की रोटी' में गांव से पलायन कर शहर में आ बसे लोगों के मन में गांव के भोजन की याद ताज़ा करवा दी. विलुप्त होते चूल्हे और उस स्वाद को लोग स्मृतियों में ही याद किया करेंगे. पत्रिका में अक्षरों का फॉन्ट साइज कुछ बड़ा महसूस हुआ, कुछ-कुछ धार्मिक पत्रिकाओं की तरह. फॉन्ट स्टाइल साहित्यिक पत्रिकाओं जैसा ही रखें और साइज थोड़ा छोटा करें तो अन्य कुछ रचनाओं के लिए भी स्थान निकल आयेगा. 'प्राप्ति स्वीकार' की तरह 'साहित्यिक सहयात्री' नाम से भी एक स्तंभ शुरू करें, जिसमें वर्तमान में प्रकाशित हो रही स्तरीय पत्रिकाओं का संक्षिप्त परिचय शुल्क/पता/संपादक आदि हो (सिर्फ एक लाइन में) तो पठन-पाठन से दूर होते जनमानस को पुनः शब्द संसार से जुड़ने के अवसर पैदा होंगे.

अंत में संदीप अवस्थी की कहानी के बारे में कहना चाहूंगा कि 'सरहद के पार' में उन्होंने रहस्य-रोमांच का खूब ताना-बाना बुना और जिस तरह से कहानी का समापन किया, बहुत अच्छा लगा.

सभी लेखकों का लेखन और आपका रचना चयन साधुवाद के पात्र हैं.

रोशन वर्मा 'रौशन'

✉ लक्ष्य, ५२-ए, एम. पी. देवीलाल कॉलोनी,
पिंजौर-१३४१०२ (पंचकूला) हरियाणा.

❖ 'कथाबिंब' का जुलाई-सितंबर १० अंक प्राप्त हुआ. कथा-साहित्य को समर्पित कथाबिंब के ३१ वर्ष पूरे होने पर प्रसन्नता हुई. इन तीन दशकों में कई स्थापित, प्रतिष्ठित कथाप्रधान पत्रिकाएं लुप्त भी हुई हैं. निश्चय ही कथा साहित्य के प्रकाशन में 'कथाबिंब' ने अपना अलग स्थान बना लिया है. लघुकथाओं, कविताओं की उपस्थिति भी पठनीयता को संतोष प्रदान करती है. अतएव आपको एवं संपादन सहयोगियों को बधाई.

सुनील अनुरागी

✉ साहित्य-संगम, पो.बॉ.नं १२,
कोटद्वार (उ.खं.)-२४६१४९

❖ मनमोहक मुख पृष्ठ से सजा अंक (१११) पढ़ा. आपका संपादकीय बहुत कुछ सोचने को मजबूर करता है. आज बाज़ार हमारे जीवन पर इस कदर हावी हो गया है, जैसे हम कठपुतली हो गये हैं. चारों तरफ से हमें जैसे कोई रिमोट कंट्रोल से संचालित कर रहा है. पंजाबी पृष्ठ भूमि पर लिखी कहानी 'फंदा क्यों..?' (डॉ. सुधा ओम ढींगरा) में किसानों की व्यथा को बड़े मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है. 'पिताजी, चिंता न करें' कहानी में एक मध्यवर्गीय परिवार महंगाई रूपी डायन से किस तरह लोहा लेता है. यहां तक कि बच्चे भी अपने स्कूल मेले में खिलौने एवं चाट बेचकर घर में

आर्थिक सहयोग देते हैं. 'सरहद के पार' कहानी में तस्कर तस्करी के माल को इस देश से उस देश में भेजने के लिए बेरोजगार युवाओं को मोहरा बनाकर उल्लू सीधा करने की मार्मिक दास्तान है. लघुकथाएं एवं कविताएं भी अपनी छाप छोड़ती हैं. दिनेश पाठक 'शशि' की आत्मरचना पसंद आयी. मनभावन अंक के लिए साधुवाद स्वीकरें.

अर्जुनसिंह 'अंतिम'
✉ सती विहार, धामनोद,
जिला-धार (म. प्र.)-४५४५५२

❖ 'कथाबिंब' की यों तो सभी कहानियां अच्छी थीं किंतु श्री सुरेंद्र अंचल की कहानी 'चूल्हे की रोटी' वर्तमान जीवन का स्वरूप स्पष्ट करती है. रिश्ते बेमानी हो चले हैं. संवेदनाएं मृत हो चुकी हैं. केवल स्वार्थ पर वर्तमान पीढ़ी का ध्यान केंद्रित है, इस कहानी में उभारे गये इस तथ्य ने कहानी को विशिष्ट कहानी बना दिया है.

प्रोफेसर जगमल सिंह
✉ *२/४८, प्रताप नगर, ब्यावर-३०५९०१*

❖ 'कथाबिंब' का जुला-सितं '१० का अंक मिला. अपनी रुचि के अनुसार पहले 'सागर-सीपी' स्तंभ पढ़ गया हूं, शेष सामग्री पढ़ना शेष है. व्यंग्यकार प्रेम जनमेजय ने बहुत बेबाक उत्तर दिये हैं. उनके वाक्यांश को कोट करूं- 'कबीर मेरे आदर्श हैं, उनके व्यंग्य में कहीं भी हास्य नहीं है.' दूसरा -'हर लेखक के अंदर एक निर्मम संपादक होना ही चाहिए,' ख़ूब प्रभावित करते हैं. सारे उत्तर उन्होंने लेखकीय चालाकी दूर रखकर दिये हैं. बिना शपथ उठाये सच कहा है और सच के सिवा कुछ नहीं कहा है.

चंद्रसेन विराट
✉ *१२१, वैकुंठधाम कॉलोनी, आनंद बाज़ार के पीछे, इंदौर (म. प्र.)४५२०१८*

❖ 'कथाबिंब' (त्रैमा.) जुलाई-सितंबर १० अंक हस्तगत हुआ. अंक का मुखपृष्ठ मन को आकर्षित करता है. आप सदैव पर्यावरण का ध्यान रखते हैं. अंक की सभी कहानियां स्तरीय एवं पठनीय हैं.

'चूल्हे की रोटी' सुरेंद्र अंचल की कहानी मेरे मन की बात कह गयी, मुझे लगा कि यह मेरी ही कहानी है. काश! यह कहानी मेरी लेखनी द्वारा लिखी जाती तो कितना अच्छा होता.

'सरहद के पार' डॉ. संदीप अवस्थी की कहानी बार-बार पढ़ी. पढ़ते समय ऐसा लगा कि आरिफ गोली का शिकार हो जायेगा. आखिर सितारा खौफनाक जंगल से निकाल कर आरिफ को सही-सलामत घर ले आयी.

डॉ. दिनेश पाठक 'शशि' का आत्मकथ्य पढ़ा. धामपुर (बिजनौर) का नाम आते ही मन अपनेपन से गदगद हो उठा. ईश्वर से प्रार्थना है कि उनकी पत्नी को शीघ्र स्वास्थ्य लाभ हो. डॉ. प्रेम जनमेजय का साक्षात्कार भी अच्छा लगा. जनमेजय जी की व्यंग्य रचनाएं अक्सर रेडियो, टी.वी. पर सुनता रहता हूं. पुस्तक समीक्षा में 'टेम्स की सरगम', संतोष श्रीवास्तव का उपन्यास पढ़ने को मन लालाचित हो उठा.

महावीर सिंह चौहान
✉ जमालपुर किरत, बिजनौर (उ.प्र.)

❖ जुलाई-सितं. १० का 'कथाबिंब' समय पर मिल गया था. पत्रिका खोलते ही 'कुछ कही, कुछ अनकही' ध्यान आकर्षित करती है. कारण, आप सब पर मारक टिप्पणी कर देते हैं. जॉन ड्रायडन की तरह... टी. वी. का धारावाहिक हो या विज्ञापनों की भरमार सर्वत्र छल है, भ्रम है, मृग छलना है. कौन, श्यामली (काली) लड़की कौन-सी क्रीम लगाकर श्वेत हो जायेगी/ आकर्षक और लुभावनी. पर ऐसे विज्ञापन आवश्यकता का सृजन करते हैं तथा महंगाई और दो नंबरी को प्रोत्साहित करते हैं. आपके संपादकीय पर ही एक लंबा निबंध लिखा जा सकता है. अन्य रचनाएं प्रेरक और आश्वस्तकारी हैं.

डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय
✉ *वृंदावन, राजेंद्र पथ, धनबाद-८२६००१*

❖ 'कथाबिंब' का ११०वां अंक पढ़ा, मात्र ५२ पृष्ठों में साहित्य-सागर को समेटने के प्रशंसनीय प्रयास को प्रणाम.

'संपादकीय' पत्रिका का सिंह-द्वार होता है जिसमें होकर ही संपादक के भाव-लोक में उतरा जा सकता है. कहानी विषयक चर्चा, देश में बढ़ते भ्रष्टाचार, १९८४ के प्रायोजित दंगों, भोपाल गैस त्रासदी, कोबाल्ट की छड़ों का कबाड़ में बिकना आपकी संवेदनशीलता और

सामाजिक सरोकारों से जुड़ाव का द्योतक है. एक बात कहना चाहूंगा यदि कहानी के कन्टेन्ट की पूर्व चर्चा न करके उसको पाठक के ऊपर छोड़ा जाता तो क्या अच्छा न रहता? इससे पाठक की उत्सुकता अंत तक बनी रहती. कहानियों का चयन बेहद सुंदर है. संकलित कहानियां, कहानियों जैसी लगीं. 'वह चुप हैं' और 'इज़्ज़त के रखवाले' बहुत कुछ सोचने को मजबूर करती हैं. डॉ. चंदेल और डॉ. पद्मा शर्मा को यदि संभव हो तो मेरे साधुवाद प्रेषित करने की कृपा करेंगे.

श्री विष्णु चंद्र शर्मा से बातचीत बेहद सारगर्भित लगी जिससे मेरी अवधारणा, 'रचनाकार आलोचक से बड़ा होता है और वह किसी आलोचक का मोहताज नही होता है', को बल मिला.

जय राम सिंह गौर
✉ १८०/१२, बापूपुरवा कॉलोनी,
किदवई नगर, कानपुर-२०८०११

❖ 'कथाबिंब' का जुलाई-सितंबर २०१० अंक प्राप्त हुआ. पत्रिका में उत्कृष्टता की परंपरा निभायी गयी है. मुखपृष्ठ से लेकर अंतिम पृष्ठ तक आपके कुशल संपादन की झलक मौजूद है. सुरेंद्र अंचल की 'चूल्हे की रोटी' एवं डॉ. सुधा ढींगरा की 'फंदा क्यों...?' कहानियां बहुत अच्छी लगीं. दिनेश पाठक 'शशि' व जसविंदर शर्मा की लघुकथाएं बेहतरीन तथा प्रभावशाली हैं. 'कुछ कही, कुछ अनकही' संपादकीय विचारोत्तेजक व विद्धतापूर्ण है.

श्याम सुंदर 'सुमन'
✉ १०पी२३, आर.सी.व्यास कॉलोनी,
भीलवाड़ा-३११००१

❖ 'कथाबिंब' बराबर मिल रही है. पत्रिका का एक-एक अंक वैविध्यपूर्ण एवं गंभीर रचनात्मक सामग्री से सुसज्जित होता है. पत्रिका का कोई भी ऐसा कोना नहीं जहां आपका कौशल न झलकता हो. सामाजिक, मानसिक एवं बाज़ारवाद की संस्कृति के दौर में अपनी वैचारिक प्रतिबद्धता, मूल्यों को बचाये रखना बड़ी बात है.

डॉ. सुरेंद्र गुप्त
✉ आर.एन. ७, महेशनगर,
अंबाला छावनी-१३३००१

❖ 'कथाबिंब' का जुलाई-सितंबर १० अंक उच्च स्तरीय बन पड़ा है. बड़ी-छोटी सभी रचनाएं श्रेष्ठता लिये हुए हैं. एक बात जो सबसे अच्छी लगी कि भले आप व्यंग्य नहीं छापते हैं लेकिन व्यंग्यकार प्रेम जनमजेय जी का बढ़िया साक्षात्कार छापने की सहृदयता तो दिखाते ही हैं. साक्षात्कार के लिए मधुप्रकाश भी बधाई की पात्र हैं. 'नूर' की ग़ज़लें अच्छी हैं और डॉ. वासुदेव की कहानी भी.

असीम कुमार आंसू
✉ ए-४०३, 'एस्टर', ठाकुरगांव,
कांदिवली (पूर्व), मुंबई- ४००१०१

❖ 'कथाबिंब' जुला-सितं २०१० अंक प्राप्त हुआ. पत्रिका में समाहित सभी रचनाएं, कहानियां, लघुकथाएं, ग़ज़लें, कविताएं गागर में सागर भरती हैं. सुदूर दक्षिण के पाठकों के लिए यह पत्रिका किसी अमृत से कम नहीं है. कहानी- 'चूल्हे की रोटी', 'गफ़लत' लघुकथा, दो ग़ज़लें (सलीम अख्तर) काफी अच्छी हैं. रचनाओं का चयन पत्रिका को चार चांद लगाता है. 'कुछ कही, कुछ अनकही' संपादकीय लेख पत्रिका की गरिमा को बढ़ाता है. हिंदी साहित्य को सुधि पाठकों तक पहुंचाने में पत्रिका सेतु का कार्य कर रही है. पूरे संपादन मंडल को विशेष रूप से साधुवाद.

वासुदेव 'शेष'
✉ जी-४, अक्षया फ्लैट्स, ५५ इरुसला स्ट्रीट,
ट्रिप्लीकेन, चेन्नई- ६००००५

❖ 'कथाबिंब' का जुला-सितं '१० अंक प्राप्त हुआ. पत्रिका पढ़ने के बाद आपकी पत्रिका की विचारधारा उसमें शामिल शीर्षकों को पढ़कर मुझे ज्ञात हुई और सबसे अच्छी बात जो मुझे लगी आपका संपादकीय 'कुछ कही कुछ अनकही'.

आज जीवन का जो सच है उसको नकारा जा रहा है. येन केन प्रकारेण आदमी भाग रहा है धनोपार्जन करने के लिए. भले ही रास्ते ग़लत क्यों न हों. जो कुछ विभिन्न माध्यमों से परोसा जा रहा है आम जनता उसमें ही मगन है. जो क्रांति विचारों में आनी चाहिए वह नहीं. आधुनिक साधनों का प्रयोग कर लेना भर ही तो आधुनिकता नहीं होती है. पत्रिका में शामिल कहानियां बहुत अच्छी लगीं.

मीना गुप्ता
✉ द्वारा विनोद गुप्ता, निराला साहित्य परिषद,
कटरा बाज़ार, महमूदाबाद,
सीतापुर-२६१२०३ (उ.प्र.)

कहानी

नील पाखी

'बऊ दी.... बऊ दी... एदि के आसो ना. ताड़ा-ताड़ि आसो ना. तोमार नील पाखी मारा गेछे.' एक बच्ची आवाज़ देते हुए चिल्ला रही थी. बऊ दी उस बच्ची की आवाज़ सुनते ही दौड़ी-दौड़ी चली आयी. देखा, उसकी नील पाखी सर्दी में ठिठुर कर दम तोड़ चुकी है. बऊ दी की आंखों से टप-टप आंसू चूने लगे. वह अपने हाथों से उस नील पाखी (नीली चिड़िया) को उठा लायी और अपने आंगन के एक कोने में उसकी समाधि बना दी. नील पाखी उसके लिए अपने परिजनों से कहीं अधिक ही थी.

बऊ दी अपने परिवार की मझली बहू थी. उसके पति सुबोध बाबू जिन्हें लोग प्यार से 'सुबो दा' कहते थे, एक अच्छे इंसान थे. सुबो दा से बड़े 'सोना दा' का अपना अच्छा-भला कारोबार था. उनका, पत्नी, दो बेटियों और एक बेटे का अलग संसार था. सुबो दा से छोटे 'तपन दा' सरकारी नौकरी में थे. वे अपनी पत्नी के साथ बाहर रहते थे. उनकी शादी के अभी डेढ़ वर्ष हुए थे और तीन महीने पहले उनकी पत्नी ने एक बच्ची को जन्म दिया था और यहीं सोना दा के परिवार के साथ रह रही थीं. एक मात्र 'सुबो दा' अपनी पत्नी जिसे सभी बऊ दी कहते थे, के साथ अलग रहते थे, पर अभी तक उन्हें संतान सुख नहीं मिल पाया था. सबसे अधिक दर्द बऊ दी को इसी का था. बऊ दी का व्यवहार कुछ इस प्रकार था कि सभी उन्हें चाहते थे. सबकी ज़ुबान पर बऊ दी... बऊ दी लगा रहता था. सुबो दा भी अपनी पत्नी के व्यवहार से काफ़ी ख़ुश रहते.

सुबो दा लोहे की ग्रिल्स बनाने के अच्छे कारीगर थे. भाई-भाई के बंटवारे के बाद उनके पास इतनी पूंजी नहीं थी कि अलग से कारोबार जमा पाते, इसलिए एक फ़ैक्ट्री में नौकरी कर ली थी. खान-पान अच्छा ही हो जाता था. बऊ दी भी अपने घर में कपड़ा सिलाई आदि का काम कर लेती थी. इससे कुछ आय भी हो जाती थी और दिन निकल जाता था.

किंतु रह-रहकर संतान नहीं होने की पीड़ा उन्हें अकेले में सताती थी. बऊ दी तो बऊ दी अब तो सुबो दा को भी लोग बोलने लगे- 'सुबो दा...सुबो दा... बऊ दी कबे मां इके? चार-पांच बाछोर होए गे छे.'

बहूदी तो भीतर-भीतर उस दर्द को पी रही थीं. अब सुबो दा भी भीतर-भीतर कुछ चिंतित रहने लगे. किंतु उन्होंने कभी व्यक्त नहीं होने दिया. वे बऊ दी की पीड़ा को जान रहे थे, उसे व्यक्त कर और अधिक पीड़ा नहीं देना चाहते थे. इसलिए हमेशा बऊ दी के साथ हंसते-मुस्कराते रहते.

किंतु बहू दी जब अपने ही आंगन में हंसते-खेलते बड़ी दी के बच्चों को देखतीं और बड़ी दी उन बच्चों को इधर आने पर टोक-टाक करतीं तो उनके हृदय में शूल सा चुभ जाता. और एक दिन उन्होंने अंतर्मन की बातें अपने पति से कह ही दीं- 'एक बार मुझे किसी लेडी-डॉक्टर को दिखा दीजिए.'

।। डॉ. अनुज प्रभात ।।

सुबो दा भी मन ही मन ऐसा ही सोच रहे थे. किंतु पत्नी के मर्म को ठेस न पहुंचे इसलिए कभी चर्चा नहीं की. किंतु आज जब उनकी पत्नी ने स्वयं कहा तो उन्होंने तुरंत, 'कल ही चलते हैं,' कहकर हामी भर दी.

बऊ दी डॉक्टर के यहां जाने की बात सोच-सोच देर रात तक जगी रहीं और फिर कब आंख लग गयी, पता भी नहीं चला. जब नींद खुली तो सामने चाय की प्याली लिये सुबो दा उन्हें जगा रहे थे. बऊ दी झट उठ बैठीं - 'यह क्या जी, आज मुझसे पहले जग गये और यह चाय की प्याली क्यों?'

सुबो दा मुस्कुरा दिये, बोले- 'रोज तुम पहले उठ जाती थीं और चाय ले आती थीं. आज मैं ही उठ गया तो क्या हुआ? हम पति-पत्नी हैं, एक दूसरे के साथी, फिर रात तुम्हें कितनी देर बाद नींद आयी. अब चलो, जल्दी से चाय पी लो और तैयार हो जाओ. डॉक्टर के

यहां नहीं जाना है क्या?'

बऊ दी चुपचाप उनके हाथों से चाय की प्याली ले उठ गयी किंतु उनकी आंखें अपने पति के इस प्रेम को देख नम हो गयीं. नारी बहुत-सी भावनाएं व्यक्त नहीं करती. वह पुरुष की सभी भावनाओं को समझकर भी अपने को खामोश रख लेती है.

बऊ दी और सुबो दा घर से निकलकर सीधे लेडी डॉक्टर मिसेज गुहा के पास पहुंचे. मिसेज गुहा शहर की मशहूर डॉक्टर थीं. बऊ दी ने उन्हें सारी बातें बताते हुए अपनी चिंता व्यक्त की तो डॉक्टर ने उनका अच्छी तरह से चेकअप कर कुछ टेस्ट लिख दिये. टेस्ट-रिपोर्ट देखने के बाद डॉक्टर गुहा बऊ दी को सांत्वना देते हुए बोलीं- 'चिंता की कोई बात नहीं है. थोड़ी सी प्राब्लेम है दवाएं लिख देती हूं. सब ठीक हो जायेगा. यदि नहीं हुआ तो एक बार गर्भाशय की धुलाई करनी होगी, बस. बीच-बीच में चेकअप कराते रहिए, मां काली ने चाहा तो बहुत जल्द आप मां बनेंगीं.'

दोनों पति-पत्नी ख़ुशी-ख़ुशी घर लौटे. समय सरकता गया. बऊ दी समय पर दवा लेती रहीं. चेकअप भी होता रहा और छः महीने बाद बऊ दी गर्भवती हो गयीं. अब तो सुबो दा के पांव ज़मीन पर नहीं थे. वे बऊ दी पर पूरा ध्यान देने लगे. उनकी हर इच्छा को पूरी करने की कोशिश करते. फिर वह घड़ी भी आ गयी जब हल्का हल्का 'लेबर-पेन' होने लगा. सुबो दा बऊ दी को लेकर तुरंत डॉक्टर गुहा के क्लीनिक पहुंचे. किंतु असंयोग ही कहिए उस दिन वह अपने व्यक्तिगत काम से कहीं बाहर चली गयी थीं. इस्लामपुर में और कोई प्राइवेट लेडी-डॉक्टर नहीं थी. विवश होकर वे सीधे सरकारी अस्पताल पहुंचे. अस्पताल में बऊ दी को तुरंत भर्ती कर लिया गया. थोड़ी देर बाद डॉक्टर के साथ एक नर्स आयी और बाज़ार से कुछ दवाएं लाने के लिए कहा. एक पुर्जा थमा दिया. पुर्जा देते हुए उसने बताया कि अभी डिलेवरी में ५-६ घंटे की देरी है. सुबो दा दौड़ते हुए बाज़ार गये और वहां से दवाएं लाकर लेबर-रूम की नर्स को दे दीं. लगभग तीन घंटे गुज़र गये. सुबो दा की बेचैनी बढ़ती जा रही थी. वे भीतर जा भी नहीं सकते थे जो बऊ दी की हालत देख पाते. तभी वही नर्स फिर बाहर आयी, साथ में डॉक्टर भी थे. डॉक्टर ने उन्हें समझाया- 'देखिए, डिलेवरी में कुछ कॉम्पलीकेशन्स हैं, जिस कारण ऑपरेशन करना अनिवार्य है. चिंता मत कीजिए, सब ठीक हो जायेगा. आप तुरंत काग़ज़ी कार्यवाही पूरी कर कुछ दवाएं और ला दीजिए.'

नर्स ने नया पुर्जा बढ़ा दिया एवं एक फॉर्म पर नाम आदि भरते हुए हस्ताक्षर करने को कहा. सुबो दा को मानो होश ही नहीं था. वह जहां-तहां कहती गयी वह दस्तख़त करते गये, तभी नर्स ने पूछा- 'आपके साथ और कोई नहीं है?'

'नहीं', सुबो दा के मुंह से केवल इतना ही निकला.

नर्स भीतर चली गयी. किंतु सुबो दा को अकेलेपन के ख्याल ने घबड़ा दिया. तभी अपने पड़ोसी संजू बाबा की याद आयी. वही एक ऐसा था जो हर मुसीबत में साथ होता था. सोचकर कुछ सांत्वना मिली और बाहर निकलते ही तुरंत संजू बाबा को ऑफिस में फ़ोन कर सारी बातें बता दी. संजू बाबा ने कहा- 'आप दवा

१ अप्रैल १९५४;
एम.ए. (समाजशास्त्र), साहित्यालंकार

लेखन : विभिन्न राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में कविता, कहानी, गीत, ग़ज़ल, निबंध, संस्मरण एवं समीक्षा प्रकाशित.

प्रकाशन : 'बूढ़ी आंखों का दर्द' (कहानी सं.), 'आधे-अधूरे स्वप्न' (कविता सं.).

पुरस्कार : विद्यावाचस्पति, विद्यासागर; रेणुस्मृति सम्मान-२००८ (बिहार सरकार); दलित साहित्य एकादमी (दिल्ली) द्वारा वर्ष २००८ की बाबा साहब भीमराव अंबेडकर नेशनल फेलोशिप; साहित्य प्रभा विद्याभूषण सम्मान (देहरादून); साहित्यश्री-२००८ (पुष्पगंधा प्रकाशन-छ. ग.) साहित्य सिंधु (अ. भा. भाषा साहित्य सम्मेलन, भोपाल) आदि.

संप्रति : अध्यापन.

लेकर जायें, हम अभी पहुंचते हैं.' सुबो दा ने भागते - भागते दवाएं खरीदीं और सीधे ऑपरेशन थियेटर के बाहर खड़ी नर्स को थमा दीं. नर्स भीतर चली गयी.

बऊ दी को ऑपरेशन थियेटर ले जाते हुए सुबो दा ने देखा था. उस समय स्ट्रेचर पर उसकी आंखें बंद थीं. याद आते ही सुबो दा अपने को रोक नहीं पाये. अविरल आंसू आंखों से बहने लगे. तभी पीछे से किसी ने कहा- 'दादा!' सुबो दा ने आंसू पोंछते हुए देखा- सामने संजू बाबा और उसकी बहू खड़ी थी. भावावेश में वे संजू बाबा से लिपट गये और फफक-फफक कर रोने लगे.

संजू बाबा ने उन्हें धैर्य देते हुए कहा- 'चिंता मत कीजिए दादा, बऊ दी को कुछ नहीं होगा. ईश्वर की कृपा से सब कुछ अच्छा ही होगा.'

किंतु सुबो दा को धैर्य कहां, रह-रहकर उनकी आंखें ऑपरेशन थियेटर के दरवाज़े पर चली जातीं. संजू बाबा उन्हें बार-बार दिलासा देते. करीब एक घंटे बाद ऑपरेशन थियेटर का पट खुला. डॉक्टर जैसे ही बाहर आये, सुबो दा दौड़ पड़े.

डॉक्टर ने गंभीर, किंतु कोमल स्वर में कहा- 'हमें खेद है कि हम आपकी बच्ची को बचा नहीं पाये. उसे गर्भ में ही इंफेक्शन हो गया था और इसी वजह से ऑपरेशन भी करना पड़ा. किंतु सबसे बड़ी बात यह है कि आपकी पत्नी अब खतरे से बाहर हैं. उनके लिए अब आपको हिम्मत रखनी होगी.' कंधे पर हाथ रखकर डॉक्टर ने सांत्वना दी और चले गये. सुबो दा की आंखों से टप-टप आंसू चूने लगे. बोले- 'संजू, तोमार बऊ दी जिते पारबे ना.' संजू बाबा किंकर्तव्यविमूढ़.

वक़्त सबसे बड़ा मरहम होता है. बऊ दी को होश भी आ गया था. उस बच्ची के लिए कई दिनों तक रोती भी रही थीं, जिसका मुंह भी देखने को नहीं मिला था. सुबो दा ने धीरे-धीरे बऊ दी को अपने प्यार के मरहम से स्वाभाविक बना दिया, किंतु एक टीस सदा के लिए आत्मा में बैठ गयी थी कि वह अब कभी मां नहीं बन सकतीं. कारण डॉ. गुहा से जब पुनः संपर्क किया गया तो उसने बताया कि 'सीजीरियन' के समय ही कुछ असावधानी के कारण मां बनने की गुंजाइश कम हो गयी है. आगे ईश्वर कुछ भी कर सकते हैं.

ये बातें बऊ दी के लिए मृत्यु के समान थीं. फिर भी पति दुःखी न हो, उस गम को पी, वह हंसती रहतीं. पर एकाकीपन में कभी-कभी 'मां' शब्द की तृष्णा आंखों की कोर से नीर बहा जाती और एक दिन अपने इसी बहते नीर के साथ बऊ दी ने अपने पति से कह ही दिया. 'तुमि दिये कोरे नाऊ.'

'कैनो, जार बच्चा नेई उ तेन्तो थाके ना कि? आमार संतोष आछे, तोमाके केओ बांझा बोलवे ना.' बोलते-बोलते सुबो दा की आंखें भर आयीं. उन्हें बच्चा न होने का उतना दुःख नहीं था, जितना कि अपने ही घर के लोगों द्वारा 'बांझ' होने के ताना देने का.

समय अपनी गति से पंख लगा उड़ता चला जा रहा था कि एक दिन घर के आंगन में अमरूद के पेड़ पर एक नीली चिड़िया बैठी नज़र आयी. उस दिन उसने ध्यान नहीं दिया किंतु जब वह रोज-रोज आने लगी तो बऊ दी हंसते हुए यूं ही बोलीं - 'ए नील पाखी दाना खावा' और एक कटोरी में दाना डाल अमरूद के पेड़ के नीचे रख आयीं. फिर देखा नील पाखी नीचे आ दाना चुगने लगी. फिर तो नित्य का यह नियम बन गया. वह कहीं बाहर भी जाने लगतीं तो उसके लिए दाना-पानी डाल जातीं. धीरे-धीरे वह नील पाखी उसके जीने का सहारा बन गया. अब तो वह सुरीली आवाज़ के साथ घर में चली आती. कभी पंखे पर, तो कभी किसी और जगह बैठ जाती. बऊ दी को अब पंखा चलाते वक़्त ध्यान रखना होता कि उस पर कहीं नील पाखी तो नहीं?

और एक दिन बऊ दी ने घर में झूले की तरह एक रस्सी डाल दी तथा डांटने के अंदाज में बोली'- 'तुमि एखाने बोसवा, कैने बोसवा ना' और आश्चर्य, उस दिन से वह जब भी घर में आती, उसी रस्सी पर बैठ झूलने लगती. प्रेम का बंधन जीव के विभेद को मिटा देता है. यहां बऊ दी न कोई मानव जीव थीं और न ही नील पाखी कोई पक्षी. दोनों प्रेमभाव में बंधे अनंत संसार के जीव थे.

लेकिन इधर कई दिनों से बऊ दी ने जब नील पाखी को नहीं देखा तो थोड़ी चिंता सताने लगी थी. फिर सबेरे-सबेरे उस बच्ची श्रेया का आवाज़ देना और नील पाखी का मर जाना, उनके लिए एक और कुठाराघात था. संतानहीनता के गम के पल में नील पाखी का आना उसे दाना-पानी देना, उसका पेड़ पर, कमरे में,

लघुकथा

'प्लीज, सेव मी!'

✍ पूरन सिंह

मैं लोगों को देखती कि कैसे वे असहाय और बूढ़े मां-बाप को मार पीटकर घर से निकाल देते हैं. तभी से मन में लड़कों और धीरे-धीरे पुरुषों से नफ़रत करने लगी. मेरी शादी हुई तो पति बहुत प्यार करने वाला मिला. धीरे-धीरे पुरुषों के प्रति मन में बनी धारणा मोम बनकर पिघलने लगी थी. बस फिर क्या था पहुंच गयी मंदिर, 'हे भोलेनाथ! मुझे बेटी दे दो.' भगवान ने आशीर्वाद दे दिया था. मैंने अपनी बेटी को बड़े लाड़-प्यार से पाला. मेरे पति ने मेरा पूरा साथ दिया तो मैं आसमान में उड़ने लगी थी. धीरे-धीरे बेटी पांच साल की हो गयी. मैंने उसे स्कूल भेजना शुरू कर दिया था. वह स्कूल से आती तो मैं उसे अपनी बाहों में लेकर स्वर्ग में उतर जाती थी.

मम्मी आज मैंने एक पोयम याद की है, बहुत प्यारी-सी....सुनोगी....टिव्ंकल, टिव्ंकल....लिटिल स्टार, हाउ आ..... इसके बाद बेटी क्या सुनाती रही, मैं नहीं जानती. मैं तो उसकी पोयम के साथ ही दूसरी दुनियां में उतरती चली गयी थी. भगवान से अपने लिए मांगे गये आशीर्वाद पर मैं गर्व करती.

तभी एक दिन....

बेटी स्कूल से आयी. चेहरा उतरा हुआ. डरी सहमी-सी. मैंने उसका चेहरा अपने हाथों में लेकर पूछा,'व्हाट हैपिंड, माई स्वीट डॉल?'

'मम्मा हेल्पर ऑफ माइ स्कूल, टच मी हियर.' और मेरी मासूम सी लाडो ने अपनी छोटी-छोटी दोनों जांघों के बीच में हाथ रख दिया था. मम्मा, 'आइ आफ्रेड हिम, प्लीज़ सेव मी.' और इतना कहकर वह नन्हीं सी जान रोने लगी थी. साथ ही मेरी गोद में बचने के लिए आश्रय तलाश रही थी.

✆ २४० बाबा फरीद पुरी, वेस्ट पटेल नगर, नयी दिल्ली-११०००८.

फुर्र-फुर्र उड़ना, उससे बातें करना, इतना ही नहीं कभी-कभी आकर कंधे पर बैठ जाना एक दैनिक तालिका की तरह, किंतु जीवन का अभिन्न अंग बन चुका था बऊ दी के लिए. इसलिए उस अभिन्न अंग को अपने स्नेह-प्रेम से सिक्त करने हेतु श्रद्धा सुमन स्वरूप बऊ दी ने आंगन के एक कोने में ही उसकी समाधी दे डाली.

वक़्त का एक बार फिर कदम बढ़ा, दिन महीने गुज़रे और उस स्थान पर न जाने कैसे पीले-पीले फूल के पौधे उग आये. वह भी पौधा छोटा न होकर बड़ा-सा था. और एक दिन आंगन में खेलती वही बच्ची श्रेया ने चिल्लाना शुरू किया- 'बऊ दी-बऊ दी तोमार नील पाखी एसे गेछे. ऐई बार दू आछे.'

बहू दी श्रेया की आवाज़ सुनकर दौड़ी-दौड़ी चली आयीं. देखा, सच में उस समाधि के निकट पीले-पीले फूलवाले पौधे की टहनी पर दो छोटी-छोटी नीली चिड़ियां चूं-चूं कर रही हैं. वह समझ गयीं, यह उसी नील पाखी की बच्चियां हैं जो कहीं अंडे देकर चली आयी थी और ठंड से उसकी मृत्यु हो गयी थी.

बऊ दी की आंखों से अश्रुधारा बहने लगी. वह तुरंत दौड़कर कटोरे में दाना-पानी ले आयीं और पौधे के निकट रख थोड़ी दूरी बना खड़ी हो गयीं. दोनों नील पाखी दाना चुगने लगीं. तभी श्रेया बोल उठी- 'ई दू ठो नीलपाखी तोमाके मां बोलवे, बड़ी मां आज-आज थिके आमियो बोलबो तोमाके- बड़ी मां....' बहूदी को तो मानो जीने का सहारा मिल गया हो. उसने नन्ही बच्ची श्रेया को अंकपाश में भर लिया.... फिर नीली-नीली चिड़ियों की ओर एकटक ममता भरी नज़रों से देखने लगीं.

✆ दीनदयाल चौक, फारविसगंज,
अररिया (बिहार)-८५४३१८
मो. ९४७००२३२४९

कहानी

एक परिचय, अंतहीन

॥ डॉ. सतीश दुबे ॥

किसी संस्थागत होस्टल में रहने की बजाय 'प्राइवेट रूम' लेकर रहने की अपनी इच्छा को मूर्त रूप देने के लिए विश्वविद्यालयीन परिसर से कुछ फासले पर स्थित कॉलोनियों की इमारत में खोजबीन करते हुए वे दोनों 'सिद्धार्थ अपार्टमेंट' पहुंचे.

यद्यपि वे दोनों अलग-अलग शहरों के रहनेवाले थे किंतु प्रवेश की औपचारिकता पूरी करवाने के लिए साथ में आये अविभावकों सहित हुई लॉज में प्रथम भेंट, काउंसिलिंग और अलग-अलग विषय होने के बावजूद एक ही कॉलेज में सीट मिल जाने के कारण मित्रता की प्रगाढ़ता में पंख लग गये थे.

गेट पर खड़े चपरासी से पूछने पर ज्ञात हुआ कि ब्लॉक नंबर आठ की पांचवी मंजिल के फ़्लैट्स केवल स्टूडेंट्स के लिए हैं, हो सकता है वहां कुछ खाली हों. हक़ीकत जानने के लिए वे लिफ़्ट की ओर पहुंचे तथा पांचवीं मंजिल पर जाकर खड़े हो गये. पूरी मंजिल पर ऐसा सन्नाटा पसरा था मानों रहवासी क्षेत्र नहीं वरन सुनसान जंगल हो. इधर-उधर निगाह घुमाने पर लंबे कॉरीडॉर में आमने-सामने के अलावा दायीं ओर कुल जमा चार फ़्लैट दिखाई दिये. वे उसी ओर मुड़ गये. कुछ ही कदम आगे बढ़े होंगे कि उन्हें एक युवती फ़्लैट का ताला खोलते हुए दिखाई दी. आहट पाकर चाबी घुमा रहे उसके हाथ थम गये. पलटकर उसने दोनों की ओर देखा, परिचित होने का आभास देती मुद्रा में पूछा -'फ़्लैट की तलाश में घूम रहे हो ना? कौन से कॉलेज में एडमिशन मिला?'

'जी....टी.टी.सी.आई.'

'कहां से हो....?'

'दोनों मध्य प्रदेश से, मैं जबलपुर से ये भिलाई से...'

'हूं....ठीक...चलो ये ताला खोलो...'

दरवाज़ा खुलने पर, उसने अंदर प्रवेश किया. बैग एक तरफ रखा तथा दोनों को अंदर आने तथा साइड में रखी कुर्सियों पर बैठने का इशारा किया.

'क्या नाम है तुम लोगों के....'

'मेरा हर्षित और इसका धैर्य...'

'सब जबाब तुम्ही दे रहे हो, क्या यह गूंगा है?'

'नहीं मैम, ऐसी बात नहीं. दोनों एक साथ ही एक प्रकार का जवाब देते तो लगता हम आपसे बोल नहीं रहे हैं, किसी देवी की आरती गा रहे हैं.' धैर्य का धैर्य टूटा तो एकदम स्टोन थ्रोइंग लैंग्वेज में.

'अच्छा यह बताओ तुम आ किस जंगल से रहे हो?'

'मैम हम ट्राइबिल्स के रिजर्व कोटे से नहीं, जनरल कोटे से हैं.' हर्षित ने एम.पी. के जिन शहरों के नाम बताये वे पूरे देश में जाने जाते हैं.'

युवती ने क्रोध भरी मुद्रा में उसकी ओर देखा तथा किंचित ऊंची डपटभरी आवाज़ में बोली- 'इधर सामने कॉरीडोर में कितने रूम हैं. मालूम चौदह, जिनमें बयालीस स्टूडेंट्स रहते हैं और मेरे आसपास तीन में नौ कितने हो गये, बावन सब मिलकर तुम्हारी ऐसी धुनाई करेंगे कि धीरज छोड़कर घर भागते फिरोगे. जहां से आये, वहां से इतना भी सीखकर नहीं आये कि सीनियर्स को कैसे जवाब देना चाहिए.'

'सॉरी मैम....'

मैम के तेवर देख दोनों ने महसूस किया मानों वे एकदम आतंकी माहौल में गिरफ़्त हो गये हैं. छुटकारा पाने के लिए दोनों एकदम भागने के अंदाज में खड़े हो गये- 'मैम हमें जाने की आज्ञा दीजिए.' हर्षित की भयाक्रांत विनम्र आवाज़ धीरे से निकली.

'आज्ञा इतनी आसानी से थोड़े ही मिलेगी. जैसे बैठे थे, वैसे ही वापस बैठ जाओ.' आदेशात्मक स्वरों में निर्देशित करते हुए वह अंदर की ओर चली गयी. दोनों

के कानों में किसी से मोबाइल पर बतियाने की निरंतर आवाज़ें आने लगीं और अंत में जब उसने कहा कि, 'आ जाओ थोड़ी मजा-मस्ती रहेगी.' तो वे एकदम हरकत में आ गये. हर्षित ने आंखें तरेरते हुए धैर्य की ओर देखा- 'लो बेटा, आ गयी ना शामत, इसे कहते हैं सिर मुंडाते ही ओले पड़ना, तुझे जरा ठीक-ठाक से बोलना था ना...'

'ठीक तो बोला यार, मुझे क्या मालूम था मेरी सीधी सच्ची बातों से उसका इगो हर्ट होगा.... तैने भी तो...'

धैर्य का वाक्य पूरा भी नहीं हुआ था कि मुस्कुराते हुए घरेलू वेशभूषा में मैम उनके सामने आकर बैठ गयी... 'क्या गुफ़्तगू हो रही थी? तुम लोगों को रूम-वूम चाहिए ना.'

'जी, मैम...'

'तो सुनो, मैंने अभी तक अपने रूम-मेट बनाये नहीं हैं. तुम पहली मीटिंग में ही ठीक-ठाक लगे. सोच के मुझे एक दो रोज में मोबाइल पर ख़बर कर देना. अब तुम चाहो तो जा सकते हो.'

दोनों ने एक दूसरे की आंखों में झांका और पारस्परिक सहमति के संकेत का एहसास होने पर हर्षित बोला- 'मैम, किराया क्या होगा...?'

'यहां हर फ़्लैट का किराया पांच हज़ार है. मीटर के अनुसार बिजली किराया अलग याने तुम दोनों को सब मिलाकर अधिकतम दो-दो हजार देने होंगे...'

'मैम हम पैरेंट्स से पूछ लेते हैं,' कहते हुए दोनों ने बाहर जाकर पहले आपस में गुफ़्तगू की, फिर मोबाइल पर चर्चा और लौटकर बोले- 'मैम, हमें मंजूर है...'

'तो ठीक है, अपना सामान-आमान लेकर आ जाओ. हां, जब भी आओ आना चार बजे के बाद... जाने से पहले अंदर जाकर रूम देख लो. वेल फर्निश्ड है....कॉट, टेबल, चेअर, वार्डरोब, बुकशेल्फ, आइना, हर कमरे में है. किचन और बाथ कॉमन.'

अंदर से ख़ुशमिजाज चेहरा लेकर लौटते हुए, दोनों ने अलग-अलग शब्दों में मैम के प्रति आभार व्यक्त किया. जिसका सम्मिलित अर्थ था- 'आपने हमारी बहुत बड़ी समस्या सॉल्व कर दी...'

'तुम लोगों ने यह तो बताया नही कि ब्रांच कौन सी मिली है?'

कथाबिंब के हितैषी एवं नियमित लेखक

'मैम, मैं सी.एस. लेना चाहता हूं और धैर्य टेली कम्यूनिकेशन...'

'मैम, मैं कुछ कहना चाहता हूं.' धैर्य को मुखरित होते देख, हर्षित ने उसकी ओर ऐसा देखा मानों कह रहा हो- तेरा कहना तो रहने ही दे. मैम उसके मौन-मंतव्य को समझते हुए हंसकर बोली- 'बोलने दो ना, तुम तो ऐसा समझ रहे हो मानों वो इंजीनियरिंग नहीं, प्राइमरी का स्टूडेंट हो...'

'हां, बोलो धैर्य क्या कहना चाहते हो...?

'अभी तक आपसे हुई बातचीत से ऐसा लगा जैसे आप थानेदार और हम मुलजिम हों. आपने हमसे सब कुछ जान लिया, पर अपने बारे में तो कुछ बताया नहीं..'

धैर्य की बातों में उसने नये माहौल से परिचित होने का उत्साह मिश्रित भोलापन नज़र आया. हंसकर बोली- 'धैर्य, तुम्हारे नेचर में आत्मविश्वास और बोल्डनेस तो है किंतु उसके प्रयोग में होनेवाली व्यावहारिकता की कमी है. तुम्हें कॉलेज के नये माहौल में एडजस्ट होने की बहुत सारी टिप्स गुरू बनाकर मुझसे लेना होंगी. उनमें से पहली मैं अपनी ओर से यह दे देती हूं कि 'इन्ट्रो-इन्ट्री' में किसी सीनियर से ऐसा पूछना मत, नहीं तो एक के बाद एक याने सब मिलकर तुम्हारा ऐसा वेलकम करेंगे कि .... नानी-दादी को बताते फिरोगे. पर, तुमने इतनी देर एडजस्ट होने के बाद मुझसे कुछ जानना चाहा, मुझे यह अच्छा लगा. पर तुमसे एक चूक हो गयी, क्या तुमने कभी ऐसा सुना कि सिपाही द्वारा सामने खड़े किये गये मुलजिम ने थानेदार से कोई प्रश्न किया हो..?' मैम की घूर रही बड़ी-बड़ी आंखों के

तेज़ से स्वतः झुके चेहरे की मुद्रा में उसके फुसफुसाते अधरों का जवाब था- 'सॉरी, मेरा इस बारीक बात की ओर तो ध्यान ही नहीं था...'

'आगे से ध्यान रखना. मेरे बारे में जानना चाहते हो ना? नाम, रूपांशी. रहनेवाली धूलिया महाराष्ट्र. कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग में इन्फॉर्मेशन टेक्नोलॉजी ब्रांच के सेकेंड इयर लॉस्ट की स्टूडेंट. ओ. के. तुम लोगों ने बहुत दिमाग चाट लिया. अब जाओ, और खूब-खूब सोचकर चाहो तो मेरे फ़्लैट में आ जाना. दो-साल के बाद किसी को अपने साथ रखने की वजह फिर कभी... अब एकदम स्टैंड-अप.'

खूब-खूब सोचने, कुछ और तलाशने के बाद अंततः हर्षित-धैर्य, सिद्धार्थ अपार्टमेंट के आठवें ब्लॉक, पांचवीं मंजिल, फ़्लैट नंबर पच्चीस में रूपांशी के रूम-मेट हो गये. आंतरिक-जीवन प्रणाली की संपूर्ण व्यवस्था आपसी समझ के आधार पर तय करके रूपांशी ने दोनों को होस्टलनुमा मंजिल की संपूर्ण गतिविधियों का परिचय देते हुए अवगत करा दिया कि कॉरीडॉर के आमने-सामने के स्टूडेंट अपनी-अपनी रो के अनुसार खांचे में बंटे हुए हैं, उसी तर्ज पर उनकी साइड के चार फ़्लैट के रहवासी बंटे थे. ये नौ बंदे, नौ रंगों में भले ही बंटें हो किंतु उनका अर्जुन की तरह मूल लक्ष्य है कैरियर. रिलैक्स होने के लिए जब स्टूडेंट होने का भूत सिर पर आकर बैठ जाता है तो उनकी हरकतों से नामी-गिरामी तांत्रिक भी छुटकारा नहीं दिलवा सकता. किंतु उन्हें किसी की भी इसलिए चिंता नहीं करना है कि वे रूपांशी-द-ग्रेट के रिश्ते में हैं और सचमुच कॉलेज में भले ही रैगिंग के बहाने सीनियर्स ने उनसे छेड़-छाड़ की हो पर इस रेजीडेन्शियल होस्टल में नाम-गाम के सामान्य इन्ट्रो के अलावा उनसे किसी ने कोई रैगिंग जैसी हरकत नहीं की. रूपांशी के रूप में इस अनजान शहर में कोई इतना आत्मीय-सहयोगी मिल सकेगा, इसकी उन्होंने और परिवार के लोगों ने कल्पना भी नहीं की थी.

रूपांशी न केवल, स्टूडेंट बल्कि व्यावहारिक लड़की के रूप में अपार्टमेंट की कई महिलाओं और बच्चों के बीच लोकप्रिय, चेहरा इतना आकर्षक कि क्षणिक फिसलन वाली दूसरों की आंखें ठहरकर आगे बढ़ने का नाम न लें. खुशमिजाज, हर फिक्र को हंसी-ठहाकों में उड़ानेवाली मस्त-मस्त ज़िंदादिल. चेहरे और आवभाव से भोली-भाली. पर ऐसी भोली-भाली नहीं कि किसी के धापे में आ जाये. शायद उसकी इसी विशेषता ने कलीग्स को ''शोले'' की ''बसंती'' नाम नवाजे जाने के लिए प्रेरित किया हो. कल ही जब जन्म दिन पर प्रशांत की ''हैप्पी बर्थ-डे'', लात-घूंसे, बधाइयां, अति-रंजन का आकार लेकर उसे बार-बार हूं-हूं , हाय-हाय बस यार कहते हुए करीबन विलाप की स्थिति तक पहुंच गयीं तो अकेली वह बीच में खड़ी होकर गुर्रा उठी- 'अब एक भी आगे बढ़ा तो सबकी बर्थ-डे-सेलिब्रेट हो जायेगी. ये सब बंद करो और काटो केक!'

धैर्य और हर्षित के लिए बर्थ-डे पर पिटाई के प्रथम उपहार का यह पहला चश्मदीद और आंखें चौड़ी कर देने वाला अनुभव था. छुट्टी का दिन होने के कारण दोनों रात की घटना पर ब्यौरेवार गुफ़्तगू कर रहे थे कि, कॉलबेल ने दस्तक देकर दरवाज़ा खोलने के लिए खड़ा कर दिया. देखा प्रशांत, साथी रोशन का सहारा लेकर धीरे-धीरे चलते हुए कमरे में प्रवेश कर रहा है. आहट और उसकी आवाज़ के साथ ही रूपांशी सामने आकर खड़ी हो गयी, 'घुटनों में बहुत दर्द है आयोडेक्स है क्या?'

'यहीं है, ये लो... और प्रशांत तुम्हारा यह रोशन ऐसा बेस्ट-फ्रेंड ? चुपचाप मौनी बाबा बनकर खड़ा रहा, जैसे-तैसे तुम्हें बचाने की कोशिश करना था ना ? अरे साथी वो जो मुसीबत में काम आये...'

नज़ारे का जायजा ले रहा धैर्य बोला- 'फिर भी साथी-संगत क्यों करना पड़ती है इसकी एक कथा है, सुनाऊं...'

'सुनाओ, पर यहां बैठकर नहीं, प्रशांत के पैर पर धीरे-धीरे मालिश करते हुए...प्रशांत चाहता तो रूम में भी पेन-बाम मंगवा सकता था, पर वह आया, इसलिए कि... वी आर ए फैमिली मेंबर्स, अंडरस्टैंड..!'

'यस्स मैम!'

'और ये मैम-वैम की मार्जिन लाइन की बजाय तुम लोग भी सबको अब नाम या सरनेम से संबोधित किया करो...हां चलो शुरू हो जाओ....'

'खय्याम नाम के एक संत थे. अपने शिष्य के साथ जंगल से गुज़रते हुए नमाज़ का वक़्त हो जाने के कारण, दोनों नमाज़ पढ़ रहे थे कि शेर आ गया. शेर को देख, शिष्य, संत को अकेला छोड़ पेड़ पर चढ़ गया.

किंतु संत नमाज़ पढ़ते रहे. शेर आया, संत की ओर देखा तथा चुपचाप आगे चला गया. दोनों फिर आगे बढ़े. तभी संत पर एक मच्छर बार-बार हमला कर काटने लगा. संत ने प्रतिकार कर उसका काम तमाम कर दिया. शिष्य ने पूछा- 'गुरूदेव आपने शेर को तो छोड़ दिया किंतु मच्छर को मार दिया, ऐसा क्यों...?

ऐसा इसलिए कि तब मैं खुदा के साथ था और अब इंसान के साथ हूं. इंसान के साथ में और खुदा के साथ में यही अंतर है फिर भी हमें इंसानों की संगति करना पड़ती है क्योंकि दुनियादारी में उसके बिना काम नहीं चलता...'

'अरे वाह ! तुमने तो बड़ी शानदार कहानी सुनायी. प्रशांत खुदा के नाम के साथ की गयी मसाज से कुछ रिलीफ़ हुयी...?'

'दुनियादारी की मसाज की बजाय, खुदा की संगत करना पड़ेगी, तब कहीं ठीक होगी ?' प्रशांत की मुस्कुराहट में हंसी बिखर रही थी, जिसमें सबका शामिल होना स्वाभाविक था.

हंसी प्रतिध्वनित होकर बाहर हवा में गूंज भी नहीं पायी थी कि, कॉरीडॉर में हो रहे हो-हल्ले, चिल-पों ने सबको चौंका दिया. इनके साथ खुले, बंद दरवाज़ों के बंदे भी उस तरफ सरपट भागे.

खाली तथा सुनसान रहनेवाले कॉरीडॉर में खासी हलचल थी. फ़्लैटों में रहनेवाले छात्रों, कुछ अपरिचित-परिचित 'संभवतः छात्र', लड़कियों तथा बिल्डिंग के स्थायी निवासियों के बीच वाक-युद्ध मचा हुआ था. दोनों ओर से एक दूसरे पर किये जानेवाले शब्द-वाणों की शक्ति के मूल में लड़कियों का फ़्लैट पर आने, घंटों रुकने, हंसी-ठट्ठा या मर्यादाहीन व्यवहार करने से सोसायटी का माहौल दूषित होने पर केंद्रित था. जब एक व्यक्ति ने यह टिप्पणी की कि, 'घर से दूर होने के कारण ये लड़कियां अपना धर्म नहीं समझतीं....' तो सलवार, कुरता-चुन्नी पहनी युवती तैश में आकर बोली- 'अंकल, सीमा में रहकर बोलिए. हमारे पैरेंट्स ने हमको यहां परिवार का नाम रौशन करने के लिए भेजा है उस पर कालिख़ लगाने के लिए नहीं. आपने कौन सा अधर्म देख लिया हम में....?'

'एक-एक कर बताऊं क्या...?'

पीछे की ओर खड़ी रूपांशी एकदम आगे आकर बोली- 'अंकल, हम बाहर से आनेवाली लड़कियों को तो आपने देख लिया, और इसी शहर की लड़कियों की ओर से आंखें मूंद लीं. आपके पहले मैं एक-एक कर गिनाऊं उनके कारनामें. हमारे माथे पर तो बाहर होने के डर का साया घूमता रहता है पर वे तो एकदम बिंदास होती हैं.'

सब कुछ चुपचाप देख सुन रहे सीनियर-मोस्ट हमेशा गंभीर रहनेवाला कपिल चश्मा व्यवस्थित करते हुए गंभीरता से बोला, 'अंकल लोग, इतने घर-ठिकाने वाले किसी लड़की के पिता, भाई, चाचा, मामा होकर भी आप क्या घटिया बातें कर रहे हैं. मैं आप से छोटा हूं, बेटे जैसा, फिर भी माफ़ी मांगते हुए कहना चाहता हूं कि उन्मुक्त सेक्सुअल रिलेशन्स ग़लत है, उन्मुक्त जीवन शैली याने लाइफस्टाइल नहीं... एक बात ध्यान रखिए शहर या बाहर कहीं के भी हों हर युवा-पीढ़ी का लक्ष्य कैरियर बनाना है. फ़िल्मों के हीरो-हीरोइन की ज़िंदगी जीना नहीं. और असल बात तो यह कि इस बदनुमा मुद्दे पर बातचीत करने की बजाय इस मुद्दे पर विचार करना चाहिए कि लड़कियों के साथ चलते-फिरते या मोबाइल पर हरकतें करने वालों से उन्हें कैसे बचाया जाय. जाइए, अपना काम कीजिए... आप सब लोग भी अपने रूम में जाइए.'

कपिल को मान देने वाले सभी स्टूडेंट एकदम अंकल लोगों की ओर बिना ध्यान दिये एकदम दरवाज़े बंद कर अपने कमरों में चले गये. नये अनुभव से गुज़रे हर्षित-धैर्य को भयभीत मुद्रा में भीगे कबूतरों की तरह सिकुड़े बैठ देख, रूपांशी को हंसी आ गयी- 'तुम लोग तो ऐसे बैठे हो मानो हमला तुम्हीं पर हुआ हो....

'रूप मैम, ऐसा नहीं लड़ाई-झगड़े तो सब तरफ चलते रहते हैं, पर ये यहां के बड़े-बड़े लोगों को ऐसी बात पर अपने बच्चों जैसे स्टूडेंट्स से झगड़ते देख कुछ अच्छा नहीं लगा..' हर्षित विषाद भरा चेहरा रूपांशी की ओर करते हुए बोला.

'अरे तुम नये-नये हो ये बातें इतनी गंभीरता से सोचने की नहीं होतीं..' घटनाक्रम का पटाक्षेप कर रूपांशी अपने कार्य में जुट गयी तथा उसी तर्ज़ पर हर्षित-धैर्य भी.

□

नये साल के प्रथम सत्र के बाद रूपांशी के फ़्लैट

में होनेवाले 'फर्स्ट मीट' आयोजन में दायें-बायें फ़्लैटों के अलावा ग्राउंड तथा फ़र्स्ट फ़्लोअर के परिवार की अनुजा, मीनल और विनीता भी आज मौजूद थीं. बैठक की चर्चा का फीता काटते हुए प्रशांत बोला- 'रूपांशी, पहले बताओ आज का 'मेनू' क्या है?'

'वही, कुछ अपनी कुछ उनकी और बस्स...'

'मैं चैटिंग-च्यूटिंग नहीं ईटिंग-वीटिंग के बारे में पूछ रहा था.'

'हां मैं भी यही समझी थी.' भारी-भरकम, डील-डौलवाली मीनल ने काया के अनुसार अपनी 'मोटी आवाज़' में स्वर मिलाया.'

'दरअसल प्रशांत की बजाय यह बात मीनल को ही अपने मन को आश्वस्त करने के लिए पहले बोलना थी...,' गगन के कटाक्ष मंतव्य ने ऐसा माहौल बनाया कि पूरे फ़्लैट की दीवारों पर हंसी के रंगीन फव्वारे चस्पा हो गये...

'रूप अब तो कार्ड्स ओपन करना ही पड़ेंगे...'

'अरे पेट के गुलामों 'बेस्ट फॉर ऑल' को ऑर्डर कर दिया है जो वह भेज दे...'

'आभास, रूप ने क्लीअर कर दिया ना, फिर क्यों उसकी ओर आंखें गड़ाये हो...'

'कहां किया... यह क्लीअर कहां किया कि, वह आज इतनी सुंदर क्यों दिख रही है?' शॉर्ट पैंट तथा बैंगनी लूज टॉप पहने रूपांशी की आंखों में झांकते हुए आभास ने जवाब दिया.

'आज नहीं इडियट मैं पैदाइशी सुंदर हूं. मां कहती हैं कि दाई-नर्स ने डिलेवरी कराने के बाद बताया था, तुम्हारी लड़की रति के रूप का अंश है, और इसलिए मेरा नाम रखा गया- रूपांशी, आया समझ में.'

'ठीक अब तो निगाह हटा ले...' यह दंडवते की आवाज़ थी.

'अरे तुम लोग समझते क्यों नहीं, दृष्टि हटी कि दुर्घटना...'

'ठीक है तुम्हारी दृष्टि को घूरने का इतना ही शौक है तो घूरो, पर मुझे नहीं मीनल को, मीनल तुम यहां आ जाओ...'

'फिर तो मुझे कहना पड़ेगा.. गाड़ी है लंबी भारी, रखो दूरी, जान हो प्यारी...'

'क्या बोला, अब तो तेरी जान लेकर ही रहूंगी...' कहते हुए मीनल उठी और आभास के घुटनों पर एक साइड से बैठ गयी.

'सॉरी मेरी अम्मा....सॉरी..'

एक अच्छे कॉमेडी-शॉट ने एक बार फिर कमरे को हंसी की हवा से फुलाकर गुब्बारा बना दिया.

चुप बैठी विनीता को चर्चा में सम्मिलित करने की दृष्टि से रूपांशी ने उसकी ओर आंखें घुमायीं, 'फ़ोन करने और मैसेज भेजनेवाला तुम्हारा वो आशिक अपनी हरकतों से बाज आया या उसका करें एकाध दिन स्वागत-समारोह...!'

'दीदी, ऐसे भौंकनेवाले कुत्तों के मुंह कौन लगे, मैंने तो अपना सिम ही बदल लिया...'

रूपांशी कुछ टिप्पणी करे, उससे पहले गगन बेबात ठहाका लगाकर सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हुए बोला- 'विनीता की बात सुनकर मुझे मोम की गुड़िया की तरह इसकी जैसी सीधी-सादी नम्रता की याद आ गयी..'

'गगन ज़्यादा बोलना, ठहाके लगाना, एक दूसरे की बिना सिर-पैर की बातें करना, अदाओं का प्रदर्शन कर सब लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना ही क्या स्मार्टनेस होती है?'

महफिल में अपने को विशेष अंदाज में प्रस्तुत करने की ललक पर विनीता के एकदम हुए हमले से कुछ क्षण सकते में रहने के बाद गगन फिर यथावत मूड में आकर बोला- 'सॉरी विनीता. हां तो मैं कह रहा था विनीता की तरह ही स्मार्ट और बोल्ड एक लड़की थी नम्रता! उसको भी ऐसे ही कोई मोबाइल पर परेशान करता था और उसने भी विनीता की तरह सिम चेंज कर लिया था और उसके बाद किया यह कि उस 'कोई' को उसने नये सिम से मैसेज कर दिया कि 'मैंने सिम चेंज कर लिया है. अब तुम्हारा बाप भी मुझे परेशान नहीं कर सकता..' किस्से के अंतिम छोर पर पहुंचते ही लड़कों की गूंजती हंसी के बीच मीनल तथा अनुजा अपनी सीट से खड़ी होकर गगन को आसपास घेरकर झकझोरते हुए बोलीं- 'क्यों रे पंजाबी मुंडे तू लड़कियों को बुद्धू समझता है क्या?' और हंसते हुए उसे धौल जमाने लगीं. गगन हंसते हुए उठकर एक ओर 'सॉरी...सॉरी' कहते हुए भागने लगा और उसके पीछे भारी भरकम शरीरवाली मीनल.

धीरे-धीरे चर्चा कॉलेज, पढ़ाई, परिसर में होनेवाली हरकतें, प्राध्यापकों के छात्रों के साथ प्रांतीय-भाषायी भेदभाव, प्रोजेक्ट वर्क की मार्किंग में बार्गेनिंग से शुरू होकर गुरू-महिमा से गुरू-स्कैंडल तक गर्मजोशी के साथ चरम पर पहुंची थी कि होटल से खाना आने की दस्तक ने सबका ध्यान अपनी ओर मोड़ दिया. और हॉय-बॉय की अंतिम प्रक्रिया के साथ रूपांशी के फ़्लैट का दरवाज़ा बंद हो गया.

बदलते मौसम की एक सुबह रूपांशी ने देखा कि, कॉलेज जाने की हलचल के समय मौन बैठा धैर्य मोबाइल पर शायद कोई कॉल कर रहा है. पूछने पर ज्ञात हुआ कि तबीयत ठीक नहीं होने के आसार नज़र आने के कारण वह कॉलेज नहीं जा रहा है, 'ठीक है आराम करो, यह बहुत देर से मोबाइल पर बच्चों जैसा कौन सा गेम, खेल रहे हो.'

'मम-डैड की बहुत याद आ रही है, उनके लिए मैसेज टाइप कर, मन को समझाने की कोशिश कर रहा हूं...'

'दिखाना...'रूपांशी ने पढ़ा, लिखा था- 'मम-डैड के लिए श्रद्धा-पुष्प / अजीज भी वो हैं / नसीब भी वो हैं / दुनियां की भीड़ में करीब भी वो हैं / उनके आशीर्वाद से चलती है ज़िंदगी / खुदा भी वो हैं / तकदीर भी वो हैं. अंत तक पहुंचते-पहुंचते रूपांशी भाव-विभोर हो गयी. 'बहुत अच्छा लिखा है, मैं अभी फॉरवर्ड कर देती हूं.'

थोड़ी देर बाद तैयार होकर वह फिर उसके सामने खड़ी हो गयी- 'मैं कॉलेज जा रही हूं. हर्षित भी घर गया है. तुम अपना ख्याल रखना और तबीयत ज़्यादा ही गड़बड़ लगे तो अपने प्राथमिक उपचार बक्से में से दवाई ले लेना.' परिवार के हितैषी की तरह सजग कर जाने के बाद भी उसके मस्तिष्क में खटका बना रहा कि शहर में चल रही बीमारी की चपेट में कहीं यह ना आ जाय. ... और उसकी सोच का साया सचमुच शाम को लौटने पर प्रतिबिंब रूप में उसे दिखाई दिया. बिस्तर पर कराह रहा धैर्य बार-बार अपनी मॉम को याद कर रहा था. रूपांशी ने प्यार से डांट के अधिकार से संयत कर अस्पताल ले जाकर चैक-अप कराया. रात में बुखार बढ़ जाने पर कोल्ड-बैंडेज किया. विशेष एसाइनमेंट होने के कारण कॉलेज मिस नहीं कर पाने की दशा में

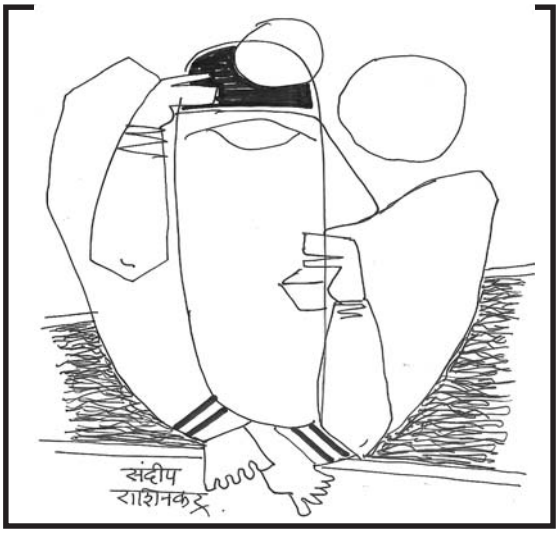

आजू-बाजू के मित्रों को जिम्मेदारी सौंपी. आत्मीय तीमारदारी के स्पर्श से तीन-चार दिनों में स्वस्थ होकर खड़ा धैर्य, भावना के वेग में बहते हुए बोला- 'रूप मैम आप नहीं होतीं तो मेरे हालात क्या होते मैं सोच भी नहीं सकता...!'

'कुछ नहीं होता मैं नहीं होती तो दूसरे मित्र होते. अपने भाग्य के खुद विधाता बनने के लिए घर से निकले, हम लोगों का एक अलग ही समाज और परिवार पूरे देश में विकसित हो रहा है. ठीक कह रही हूं ना? अब तुम अपने काम में जुट जाओ. सेमेस्टर के बाद क्लासेस सस्पेंड होने पर हर्षित की तरह घर हो आना. इससे तुम्हें ताज़गी मिलेगी.'

'रूपजी, मैं भी ऐसा ही सोच रहा हूं और घर वाले भी चाह रहे हैं.'

हर्षित, धैर्य, रूपांशी ही नहीं अपने-अपने सत्र के बाद छुट्टियों में घर गये, सब लोग लौट आये थे. यही नहीं अगले मोर्चे की लामबंदी भी सबने शुरू कर दी थी. सेमेस्टर के क्रमशः आ रहे परिणाम चेहरों की रेखाओं को अलग-अलग आकार से स्वतः एक दूसरे के सामने थे. इन्हीं दिनों एक बार फिर कॉरीडॉर में कोलाहल सुनाई दिया. किंतु इस बार इसका केंद्र रूपांशी की रो से दूसरे नंबर का फ़्लैट था. रूपांशी, कपिल सहित तकरीबन पंद्रह-बीस छात्र भय से सहमे या पर-पीड़ा से आक्रांत मनःस्थिति में कमरे में भीड़ बनकर खड़े थे. कमरे का रहवासी मयंक चश्मदीद साक्ष्य की तरह

बयान की भाषा में बता रहा था- 'वह तो दरवाज़ा अंदर से बंद नहीं होने के कारण मैं आ गया, नहीं तो गौरव यह ज़हर पी ही रहा था...' फर्श पर बिखरे तरल पदार्थ और छोटी सी शीशी की ओर उसका इशारा था. सब जानते थे गौरव अंतिम सेमेस्टर सब्जेक्ट रुक जाने के कारण क्लीअर नहीं कर पा रहा था. सबके समझाने पर विलाप करते हुए वह कह रहा था- 'घर में कमानेवाले केवल पापा हैं, पूरे घर के बराबर मेरे अकेले का ख़र्चा चला-चला कर वे थक गये होंगे और मैं हूं कि इंजीनियर बनने के घर के सपने को पूरा हीं नहीं कर पा रहा हूं. क्या-क्या सोच रखा है मैंने, पर क्या करूं.' उसके रुंधे गले से शब्द नहीं निकल रहे थे. स्तब्ध वातावरण के सन्नाटे को तोड़ते हुए कपिल उसके निकट गया तथा कंधे पर थोड़ी देर हाथ रखने के बाद बोला- 'गौरव इच्छा तो तुम्हारी पिटाई करने की हो रही है, पर आज छोड़े दे रहे हैं. देखो पार्टनर ज़िंदगी के सपनों को जो हमारे भी हैं परिवार के भी उनको साकार करने के लिए हताशा सबके सामने आती है किंतु जो जीतता है वही सिकंदर और कोलंबस कहलाता है. मुझे देखो मैं भी तो जूझ रहा हूं. पिताजी की अब तक की तपस्या का फल हम इस रूप में देंगे तो क्या वे खुद ज़िंदा रह पायेंगे. और डिग्री के बाद हमारे सामने एकदम कैंपस प्लेसमेंट में कहां कोई मनचाही खाने की थाली परोस के रख देगा...'

'सर, आप ठीक कह रहे हैं आज के ही पेपर में आया है कि सुरजीत नाम के एक इंजीनियर लड़के को किसी कंपनी ने सिलेक्ट नहीं किया तो वह टूट गया और उसने सुसाइड कर लिया..'

'बेवकूफ है, उसे चाहिए होगा एकदम लाखों का ऑफर... और एक बात ध्यान रखो. हमें ज़िंदगी संवारना है गंवाना नहीं.'

'गौरव तुम पिताजी की अर्निंग प्राब्लेम की बात कर रहे थे ना, उन्हें अब एहसास मत होने दो. घर में तुम्हारे सात मेंबर्स हैं यहां सत्तर. सब हो जायेगा. चिंता कर अपने को कमजोर मत बनाओ. चलो एकदम खड़े हो जाओ और सबसे मुस्कुराकर हाथ मिलाओ... हां ऐसे...'

'एक मिनिट और, अभी तक तुम सब लोगों ने गौरव से कुछ-कुछ कहा, मैं रूपांशी, उसके सहित तुम सबसे कुछ कहना चाहती हूं, उसे ध्यान से सुनो और दिमाग में फीड करके अपने-अपने रूम में जाओ-

''मंजिलें उन्हीं को मिलती हैं,
जिनके सपनों में जान होती है,
पंखों से कुछ नहीं होता,
हौंसलों में उड़ान होती है.''

समय के साथ हौसला बनाये रखकर हर्षित और धैर्य के लिए वर्षों के विविध घटनाक्रमों का ब्यौरा मस्तिष्क की डायरी में भले ही धुंधला गया हो किंतु रूपांशी के साथ बिताये हर क्षण अमिट अक्षरों के रूप में जब भी उभरते हैं मन ऊर्जा से लबालब भर जाता है. अपने दो वर्षीय क्लीअर-कट कैरियर को इसी में शुमार करते हुए उन्हें ऐसा लगता है मानो उसका व्यक्तित्व और व्यवहार ऐसा प्रेरणा बिंदु रहा है जिसकी बदौलत वे अब तक के लक्ष्य को प्राप्त करने में कामयाब हो सके.

पिछले दो-तीन महीनों से उनके जीवन का क्रम ठहर सा गया है उसे वे कब और कैसे निरंतरता दे पायेंगे यह तय कर पाना उनके लिए मुश्किल हो रहा था.

रूपांशी का शिक्षाकाल समाप्त होने, कैंपस प्लेसमेंट में मुंबई की एक कंपनी द्वारा 'मार्केटिंग इन्फॉर्मेशन मैनेजर' पद के लिए सिलेक्ट करने के समाचारों की उन्हें जितनी खुशी थी बिछोह का उतना ही दुःख. बिदाई के दो-तीन दिन पहले तक सामान पैकिंग करवाते हुए बार-बार होनेवाली उनकी नम आंखों को देख रूपांशी महसूस भर करने के लिए मजबूर थी, महज इसलिए कि भावना का वह वेग उसके हृदय में उनसे अधिक आलोड़ित हो रहा था.

ऐसे ही शाम ढले एक दिन, साथियों तथा बिल्डिंग के चहेतों की मेल-मुलाकात, बिताये क्षणों के विभिन्न पक्षों पर चर्चा के रूप में संपन्न होने के बाद तीनों फ़्लैट का दरवाज़ा बंद कर एक दूजे के सामने बैठ गये. बहुत कहने की कोशिश को कुछ का आकार देते हुए रूपांशी की ओर टुकुर-टुकुर देख रहा हर्षित बोला- 'रूप मैम, आप चली जायेंगी तो अपने फ़्लैट, मंजिल ही नहीं पूरी बिल्डिंग की रौनक ख़त्म हो जायेगी!'

'और हम तो ऐसा महसूस करेंगे मानो हमारी शक्ति ही समाप्त हो गयी है...'

दोनों के आत्मीय-स्नेह से अभिभूत रूपांशी मिलने-जुलनेवाले सभी लोगों की बातों के जवाब के लिए अपने को जितना सक्रिय महसूस कर रही थी, उसे लगा उसकी वह सक्रियता दोनों के निश्चल आत्मीयभाव में लुप्त हो गयी है. भावना के माहौल को तरज़ीह देने की बजाय अलग ही भंगिमा में वह बोली - 'मेरे प्रति तुम्हारा अटैचमेंट है ना, इसलिए तुम ऐसा कह रहो हो. असल में 'रौनक' व्यक्ति की नहीं उसको दिये जाने वाले प्यार की होती है. और फिर तुम जिस रौनक की बात कहते हो वह ख़त्म नहीं होगी, यथावत रहेगी किसी दूसरी रूपांशी के रूप में...' और यूं अतीत को भविष्य के साथ जोड़े रखने वाला चर्चा का यह क्रम नींद के आगोश में लेने के लिए बार-बार दबाव बनाने वाले क्षणों तक चलता रहा.

अंतिम दिन रेल्वे प्लेटफॉर्म पर विदाई-भीड़ का हर शख्स उनका अस्तित्व रूपांशी के पारिवारिक सदस्य के रूप में महसूस कर रहा था. सभी से मिलने के बाद कंपार्टमेंट में दाखिल होने से पहले रूपांशी दोनों के सामने आकर खड़ी हो गयी. उसने उनके हाथों को क्रमशः अपनी हथेली पर रखा, गर्मजोशी के साथ चूमा तथा हंसने का प्रयास करते हुए बोली- 'ठीक से रहना, फ्रेंडशिप बेल्ट मैं तो भेजूंगी ही, तुम दोनों मत भूलना. और ख़ास बात यह कि जब तक मैं ठीक से सैटल नहीं हो जाऊं तुम फ़ोन करते रहना...' वह कुछ और कहना चाह रही थी कि ट्रेन की रवानिगी-वार्निंग ने उसे कंपार्टमेंट-पायदान के ऊपर खड़ा होने के लिए मजबूर कर दिया. स्टार्ट हुई ट्रेन जब तक आंखों से ओझल नहीं हो गयी तब तक वे रूपांशी की उसी छवि को निहारते रहे.

कुछ समय तक चुपचाप खड़े रहने के बाद दोनों ने एक दूसरे की ओर 'चलें' संवाद की मुद्रा में देखा तथा कुछ मिनिटों में रेल्वे स्टेशन की बाउंड्री वॉल के बाहर भीड़ भरी चिल-पों वाली सड़क पर आकर खड़े हो गये. एक बार फिर उन्होंने महसूस किया मानों वे ऐसे शहर में आ गये हैं जहां उनका अपना कोई नहीं है.

✍ ७६६, सुदामा नगर, इंदौर-४५२००९.
मो.९६१७५९७२११

दोहे

✍ गोपालदास 'नीरज'

(१)

नीरज बनना है अगर तुमको यहां अमीर,
मत सोचो किस चीज़ को कहते हैं लोग ज़मीर

(२)

सिर्फ सुने, देखे नहीं अंधा है कानून,
इसीलिए इंसाफ का होता अक्सर ख़ून ।

(३)

हर इन्सां इस दौर में बदला है इस तौर,
सम्मुख है वो और कुछ पीछे है कुछ और।

(४)

जबसे पनपा देश में, अयोग्यता का वंश,
कऔ तो मोती चुगें, आंसू पीते हंस।

(५)

अपनी आत्मा बेचकर मैं लाया सम्मान,
आखिर वो भी बिका जो, था आख़िरी मकान।

(६)

कहीं अंगूठा छाप हैं, कहीं वधिर मतिहीन,
तभी यहां तो बज रही लोकतंत्र की बीन।

(७)

जब से गांवों में हुई, सरपंचों की रेस,
ठग चोरों ने धर लिया, साधु संत का भेस ।

(८)

सिसक सिसक रोया बहुत सारा घर परिवार,
जिस दिन उठवायी गयी आंगन में दीवार।

(९)

हिंद-पाक संबंध में संभव नहीं सुधार,
उसका मजहब है घृणा अपना मजहब प्यार।

(१०)

छोटी मछली बड़ी का सदा रही आहार,
सिर्फ शक्ति के सामने झुकता है संसार।

(११)

हो जायें जब शांति के सब प्रयत्न बेकार,
तब फिर केवल युद्ध ही है अंतिम उपचार।

✍ जनकपुरी, मेरिस रोड, अलीगढ़ (उ. प्र.)

कहानी

कर्ज़ा-वसूली

तेज़ गति से दौड़ रही ट्रेन अचानक रुकी. एक झटका-सा लगा और मैं अपनी तंद्रा से बाहर आया. शायद कोई स्टेशन आया था. मानस पटल पर बुलबुलों की तरह उठ रहे प्रश्नों को रोका. आंखों को पोछते हुए मैं भारी कदमों से प्लेटफॉर्म पर उतर कर इधर-उधर झांकने लगा. ट्रेन देश के दक्षिणी क्षेत्र को पार करके उत्तरी क्षेत्र की सीमा में प्रवेश कर गयी थी. प्लेटफॉर्म पर आते-जाते लोगों को मैं निहारने लगा. कुछ देर मौन होकर सब कुछ देखता रहा. सामने से चायवाला आ रहा था, उसे बुलाया और चाय की चुस्कियां लेते हुए अपनी सीट पर जाकर बैठ गया. सीटी बजी और लहराती हुई ट्रेन चलने लगी. मैं पुनः यादों के समंदर में गोते लगाने लगा. मेरी आंखों के सामने वह दृश्य तैरने लगा जब मुझे बैंक द्वारा सम्मानित किया जा रहा था....

बैंक के प्रधान कार्यालय की वह आलीशान गगनचुंबी इमारत. लिफ़्ट से पच्चीसवीं मंज़िल पर जाते हुए मेरी आंखें डबडबा आयी थीं. आज मुझे बैंक के प्रबंध निदेशक के हाथों सम्मानित किया जाना था. पच्चीसवीं मंज़िल की साज सज्जा और रौनक देखकर मैं चौंधिया गया. सब कुछ भव्य, सुंदर और आलीशान था. सामने वह भव्य तस्वीर थी जिसमें बैंक के अध्यक्ष महोदय देश के वित्तमंत्री को दो सौ करोड़ का चेक सौंप रहे थे. उस तस्वीर में वित्तमंत्री और बैंक के अध्यक्ष महोदय मुस्करा रहे थे. यह तस्वीर लोगों को आकर्षित कर रही थी.

स्वागत कक्ष में मेरा बड़ी गर्मजोशी से स्वागत किया गया. कुछ बहुत ही ख़ूबसूरत, सुंदर महिलाओं ने बड़े आदर से मेरा तिलक किया और मुझे मंच तक ले गयीं. समारोह की औपचारिकता पूरी होने के बाद अध्यक्ष जी ने सुंदर सम्मान चिन्ह, प्रशस्ति पत्र और गोल्ड मेडल देकर मुझे सम्मानित किया. सम्मान का जवाब देते हुए मेरी आंखें नम हो गयी थीं. मैंने इस तरह के सम्मान के बारे में कभी सोचा भी नहीं था.

वास्तव में मुझे बेहद ख़ुशी हो रही थी पर दिल में एक कसक भी थी. मेरी दृष्टि से यह सम्मान तो उन ग्रामीणों का था जिन्होंने मेरी आवाज़ से आवाज़ मिलायी थी और कडप्पा शाखा का टारगेट पूरा किया था. पिछले दस वर्षों में ऐसा कभी नहीं हुआ था.

यह सम्मान मेरी पत्नी का भी था जिसने अकेले घर की ज़िम्मेदारी को संभाला था. पांच वर्षों का अकेलापन भोगा था. जीवन के अजूबेपन को झेला था. बच्चे कच्ची उम्र पार करके जवानी की दहलीज़ पर दस्तक दे रहे थे. यही वह उम्र होती है बच्चों की जहां उन्हें संभालने की ज़रूरत होती है. ज़िंदगी जीवन के उस चौराहे पर खड़ी होती है, जहां से तमाम राहें बनने, बिगड़ने, बहकने और फिसलने की ओर निकलती हैं.

।। रमेश यादव ।।

ख़ैर, सम्मान समारोह समाप्त हुआ. कार्यक्रम के अगले ही दिन मैं अपने होम टाउन गाजियाबाद की ओर रवाना हो गया. मुझे पदोन्नत कर दिया गया था, पर अभी पोस्टिंग नहीं मिली थी. सिर पर पुनः तबादले की तलवार मंडरा रही थी. पिछले पांच वर्षों से मैंने आंध्रप्रदेश के एक छोटे-से क़स्बे की कडप्पा शाखा में बतौर प्रबंधक अपनी सेवाएं प्रदान की थीं.

ट्रेन अब पूरी रफ़्तार से दौड़ने लगी थी, मुझे वह पल और उस समय कहे हर शब्द याद आ रहे थे. मैं सोच रहा था, कि आख़िर इस सफलता के पीछे एक राज़ भी तो छिपा था कि, किसी तरह ग्रामीण सेवा के तीन वर्ष पूरे कर लूं और फिर अपने होम टाउन को लौट जाऊं, पर हुआ कुछ विपरीत. टारगेट पूरा न होने की वजह से मेरा कार्यकाल उसी शाखा में दो वर्षों के लिए बढ़ा दिया गया.

कितना अबूझ होता है ना जीवन! वह अपने को कभी पूरा व्यक्त नहीं करता. निराशा के ऐसे क्षणों में

अक्सर अंदर से कोई कहता रहता है- चिंता ना करो, सब कुछ अच्छा होगा. ऐसे स्पंदनों से उचाट मन कभी-कभी सुकून पाता है. सम्मान के पश्चात अपने भाषण को याद करते हुए मैं पुनः एक अलग दुनिया में खो गया. मेरे कानों में फिर से एक बार वे शब्द गूंजने लगे...

''मित्रों, मुझे जीवन में कवि शैलेंद्र की ये पंक्तियां प्रायः संबल प्रदान करती हैं-

तू ज़िंदा है तो ज़िंदगी की जीत पर यकीन कर,
अगर कहीं है स्वर्ग तो उतार ला ज़मीन पर.

जी हां मित्रों, मुझे भय था कि यदि इस बार भी टारगेट पूरा नहीं हुआ तो...! मुझे वापस अपने परिवार के बीच लौटना था. मगर हां, मैं बैंक की ज़िम्मेदारियों से भी भागना नहीं चहता था. करो या मरो कि स्थिति से मैं गुज़र रहा था.

वर्षों लंबी ज़िंदगी में कुछ बातें ही याद रहती हैं. साहित्यकारों के शब्दों में अजीब-सा करिश्मा होता है. वे सिर्फ़ लकीर के फकीर नहीं होते बल्कि जीवन का मर्म उंडेलकर रख देते हैं. कमोबेश वह पुराना दोहा मेरे लिए पथ प्रदर्शक बना-

मीलों लंबी ज़िंदगी, बरसों दौड़े दौड़,
बाकी सब विस्मृत हुआ, याद रहे कुछ मोड़.

दरअसल जिस जिले में मेरी शाखा थी उस जिले में एक नदी बहती थी. नदी बेछूट थी. एक ओर वरदान तो दूसरी ओर अभिशाप. जिस क्षेत्र से बहती वहां तो फसल अच्छी उगती, किंतु कभी-कभी तबाही मचाते हुए बाढ़ भी लाती थी. इस पर बांध बनाकर पानी को रोकना ज़रूरी था ताकि सुचारु रूप से पानी खेतों तक पहुंचाया जा सके और बाढ़ को रोका जा सके.

मेरे बैंक की शाखा जिस क्षेत्र में थी वहां पिछले कुछ वर्षों से सूखे का आलम था. सूखे की वजह से लोग बदहाली का जीवन जी रहे थे. कई प्रकार के कृषि लोन उस क्षेत्र में बांटे गये थे पर वसूली नहीं हो रही थी. स्थानीय नेतागण कर्ज़ माफ़ी की रट लगा रहे थे. इससे लोगों में ग़लतफ़हमी पैदा हो गयी थी, पर लोग इमानदार भी थे. वे कर्ज़ चुकाना चाहते थे, किंतु परिस्थितियों के आगे मजबूर थे. उनके इस जज्बे को सलाम करने को दिल चाह रहा था.

टारगेट पूरा करने के आसुरी ख्याल ने मुझे सख़्त

९ अक्तूबर, १९६२ मुंबई;
एम.ए. (हिंदी साहित्य-मुंबई वि.वि.), पत्रकारिता एवं अनुवाद में डिप्लोमा

पत्रकारिता : स्वतंत्र पत्रकार के रूप में १९९० से कई राष्ट्रीय एवं स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं में लेखन, मुंबई (विश्व प्रहरी). टाइम्स में एक वर्ष तक स्तंभ लेखन (घूमते-फिरते); आकाशवाणी (मुंबई) की संवादिता चैनेल के लिए कई रचनाओं की प्रस्तुति.

प्रकाशन : वैकल्य (डॉ. शिरीष गोपाल देशपांडे द्वारा लिखित मूल उपन्यास का हिंदी अनुवाद); उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ द्वारा प्रकाशित-२००५; महक फूल-सा मुस्काता चल (बाल कविता संग्रह); बिंब-प्रतिबिंब (मराठी के वरिष्ठ साहित्यकार चंद्रकांत खोत द्वारा मराठी में लिखित उपन्यास का हिंदी अनुवाद); घूमते-फिरते (लेख संग्रह) प्रकाशनाधीन.

अन्य : विद्यार्थी उत्कर्ष मंडल नामक शैक्षणिक, सांस्कृतिक संस्था में ३० वर्षों से सेवारत; विवेकानंद व्याख्यानमाला के आयोजन में सक्रिय सहभाग; फ़िल्म, टी.वी. सीरियल, नाटक एवं एकांकियों में अभिनय, कई सांस्कृतिक कार्यक्रमों का सूत्र-संचालन.

सम्मान : महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी द्वारा २००६-०७ में बाबूराव विष्णु पराडकर सम्मान- कृति-वैकल्य (उपन्यास); गुणवंत कामगार पुरस्कार-कामगार कल्याण केंद्र-महाराष्ट्र सरकार; डॉ. आंबेडकर फेलोशिप- भारतीय दलित साहित्य अकादमी (नयी दिल्ली); समाजभूषण सम्मान-पत्रकारिता (उत्तर यादव युवा संघ, मुंबई); महाराष्ट्र दीप सम्मान- महाराष्ट्र मुक्त पत्रकार संघ (मुंबई).

बना दिया और साम-दाम-दंड-भेद की नीति अपनाते हुए मैंने मिशन एन.पी.ए. (नॉन परफॉर्मिंग असेट- ऐसे बैंक लोन जो वसूल न हो रहे हों) को अपना लक्ष्य बनाया.

कुछ ही दिनों बाद जिला स्तर पर सरकारी एजेंसियों की एक बैठक में मुझे निमंत्रित किया गया. क्षेत्र के विकास और समस्याओं पर चर्चा होनी थी. उनके लिए ये महज खानापूर्ति थी पर मेरे लिए मिशन था.

सरकारी अधिकारियों के सामने मैंने नदी पर बांध बनाने और नहर निकालने की योजना रखी. वहां के जीवन के बारे में और खेतों की उपज के बारे में लोगों को समझाया. वह मोड़ मैंने बताया जहां बांध बनाना ज़रूरी था. इससे एक ओर हमारी शाखा के क्षेत्र के लोगों को बड़ा लाभ होनेवाला था तो दूसरी ओर के लोगों को बाढ़ से राहत मिलने वाली थी.

योजना पर लगनेवाली लागत के लिए आवश्यक बैंक लोन का प्रस्ताव बनाने का ज़िम्मा मैंने उठाया और इसे अपने बैंक के प्रधान कार्यालय से मंजूरी दिलवाने का भरोसा भी दिया. क्षेत्र के मुखिया ने इस योजना के बारे में मुझे पहले ही बता दिया था, अतः प्रधान कार्यालय से इस विषय में मेरी चर्चा हो गयी थी.

वैसे इसके पहले क्षेत्र के लोग जिलाधिकारियों से कई बार मिल चुके थे. हर साल एक बड़ी सभा आयोजित की जाती और उसमें चर्चा की जाती कि यदि बाढ़ आयी तो राहत कार्य किस प्रकार किया जायेगा! मदद कैसे पहुंचायी जायेगी! मुआवजे की राशि कैसे वितरित होगी! राहत शिविर कहां लगेगा, बीमारी में दवाइयां कैसे पहुंचायी जायेंगी? इत्यादि-इत्यादि. पर इन सभाओं में बांध बनाकर चारों ओर सिंचाई के लिए नहर बनाने पर कभी कोई चर्चा नहीं उठती थी. इसके कई कारण रहे होंगे, शायद स्वार्थ या कुछ और.....

आज तक आर्थिक मुद्दा ही उनके लिए सिरदर्द बना था. मैंने प्रस्ताव को प्रधान कार्यालय भेज दिया. साथ में जिला कलेक्टर और क्षेत्र के मंत्री का सिफ़ारिश पत्र भी जोड़ दिया. यह प्रोजेक्ट लोन का एक बड़ा प्रस्ताव था, जो बेहद ही संवेदनशील था. बैंक को इस प्रस्ताव में रुचि थी. राज्य सरकार गारंटी लेने को तैयार थी. लोन मंजूरी की प्रक्रिया आरंभ हुई और फिर बैठकें होने लगीं. लोगों में ख़ुशी की लहर दौड़ गयी.

मेरी कीर्ति अब क्षेत्र में चारों ओर फैल गयी थी. लोगों को लग रहा था कि नदी पर बांध मेरी वजह से बन रहा है. मैं लोन पास करवा रहा हूं. लोग दूर-दूर से मिलने आने लगे. अपने बैंकिंग के कारोबार को निपटाने लगे. धीरे-धीरे बैंक के काम काज में प्रगति होने लगी. व्यापार बढ़ने लगा. नये खाते खुलने लगे. पुराने लोन वसूल होने लगे. लोगों को लग रहा था कि क्षेत्र में जो क्रांति होने जा रही है उसका निर्माता मैं हूं. एक दिन वह भी आया जब टारगेट पूरा हो गया. मैं बेहद ख़ुश था. पर एक घटना मेरे दिल में सदा के लिए यादगार बन गयी, जो जीवनभर मैं कभी भूल नहीं पाऊंगा.

लोन वसूलने के लिए मैं एक किसान सिद्धप्पा के घर गया और उससे लोन चुकाने के लिए कहा. पहले तो वह अपनी ग़रीबी और सूखा का रोना रोने लगा. जब मैंने समझौता प्रस्ताव के तहत लोन का कुछ हिस्सा माफ़ करने के बारे में बताया और कुछ दबाव बनाया तो वह राज़ी हो गया. अकाल के कारण खेती संभव नहीं थी किंतु मेहनत मज़दूरी करके वह अपने परिवार का भरण-पोषण कर रहा था. कुछ लोन माफ़ हो जायेगा इस लालच में उसने निश्चित समय में शेष लोन राशि बैंक में जमा कर दी. समझौता प्रस्ताव के तहत मैंने उसे ऋण मुक्त कर दिया. इस तरह कई खातों की वसूली मैंने की.

मेरा टर्म अब पूरा होने जा रहा था, इसलिए मैं अपने क्षेत्र में घूम-घूमकर लोगों से मिल रहा था. अचानक उस दरवाज़े पर भी पहुंचा, जिसका कुछ लोन मैंने समझौता प्रस्ताव के तहत माफ़ करवाया था. वह सिद्धप्पा का घर था. बेहद उदासी का आलम था वहां.

सिद्धप्पा मुझे देखकर मेरे पैरों पर गिर गया और रो-रोकर कहने लगा- 'सर! मैं बहुत ग़रीब होना जी, पर अपना इ़ज़्ज़त बहुत प्यारा होना. किसी का कर्ज़ बाकी रखना हमको शर्म की बात होना. आप्प वसूली के लिए मेरे घर आना तो कर्ज़ा चुकाने के लिए मैंने बेटी की शादी के लिए रखा पैसा आपके बैंक में जमा कर देना. पर बाद में अचानक मेरी पत्नी बीमार होना जी. मैंन्ने सोना (जेवर) बेचकर उसका इलाज करना. बाद में लड़के वाले शादी के वास्ते बार-बार मेरे घर को आना जी. मैं मजबूर होना. मेरे पास पैस्सा नहीं होना. कैस्सा शादी करेंगा? फिर शादी टूट जाना. मेरी बेटी को बड़ा धक्का लगना. घर की लाज बचाने के लिए

एक दिन गले में फंदा लगाकर वह झूल्ल गयी जी! मैं तो लुट गया. अब मेरे पास खाने को भी कुछ नहीं होना. शायद एक दिन हम्म भी फंदा लगा लेंगा सर...'

उसकी इस करुण गाथा ने मुझे झकझोर कर रख दिया. वह आंसुओं को रोक नहीं पा रहा था. मेरी ज़ुबान सन्न हो गयी थी. मैंने उसे धीरज दिया. उसके कंधों पर हाथ रखकर कुछ देर तक उसे सहलाते रहा और भारी कदमों से आगे की ओर बढ़ गया.

मित्रो, आज के इस आयोजन के प्रति मैं कृतज्ञता व्यक्त कर रहा हूं और यह सम्मान मैं सिद्धप्पा को समर्पित कर रहा हूं.''

मैंने देखा सभागृह में लोग भी सन्न हो गये थे. कुछ पल के सन्नाटे के बाद हल्की-सी तालियां बजीं. शायद लोग इस बात को पचा नहीं पा रहे थे. मन ही मन मैं अपने आपको दोषी मानने लगा था.

□

सरपट भागती ट्रेन अचानक रुकी. एक झटका-सा लगा. मैं अपनी यादों को समेटते हुए बाहर आया और बाहर झांकने लगा. सामने एक जाना-पहचाना सा आदमी दिखा.

मुझे लगा जैसे सामने काला-अधनंगा, लुंगी लपेटे सिद्धप्पा फूट-फूटकर रो रहा था. मैं हाथ जोड़कर उससे कह रहा था-

'सिद्धप्पा हो सके तो मुझे माफ़ कर देना. मुझे तुम पर दबाव नहीं डालना चाहिए था. पर क्या करूं मैं ड्यूटी निभा रहा था और तुम लोक-लज्जा और इज़्ज़त की खातिर फर्ज़ अदा कर रहे थे. आगे जो कुछ हुआ वो नियति का खेल था. काश! तुम जैसी ईमानदारी उन घाघ पूंजीपतियों और नेताओं में भी होती जो करोड़ों रुपयों का लोन आपसी मिलीभगत के चलते डकारकर बैठ जाते हैं. उनके लिए यह लाज लज्जा या शरमो-हया की बात नहीं, बल्कि शान की बात होती है. इस डूबी हुई अनगिनत करोड़ों की पूंजी से देश के करोड़ों सिद्धप्पाओं का जीवन आबाद हो सकता है. कई नदियों पर बांध बनाकर सिंचाई के लिए नहरें निकाली जा सकती हैं. शिक्षा, बिजली, पानी हाट-बाजार, पक्के मकानों का इंतज़ाम किया जा सकता है. अर्थी के बजाय बेटियों की डोलियां सजायी जा सकती हैं.... मुझे माफ़ कर देना मेरे भाई.... मुझे माफ़ कर देना...'

कविता

नव सृजन के लिए

✍ **डॉ. नीरज वर्मा**

जला डालो
सारी किताबों को,
वेदों और पुराणों को,
तख़्तों ताजों और मीनारों को,
जला डालो
इतिहास और युद्धों को भी,
जीवन और गीतों को,
ध्वनियों,
शब्दों भाषाओं,
और रंगों को भी
जला डालो.
बस छोड़ देना
थोड़ा सा खेत,
बचा के रखना
गैंती, कोड़ी, हल
और बूंद भर पसीना,
नव सृजन के लिए
एक बार जलाना होगा
सब कुछ.

मायापुर, अंबिकापुर,
सरगुजा (छ.ग.)-४९७००१

शायद यह मेरा भ्रम था! मैं अभी तक उस सदमे से बाहर नहीं निकल पाया था.

ट्रेन की सीटी बजी. मैं पुनः अपनी सीट पर आकर बैठ गया. काले शीशे से बाहर झांकने की कोशिश कर रहा था. सफेद लुंगी लपेटे, काला-अधनंगा एक शख़्स बेतहाशा भागा चला जा रहा था. मैं अपने भीतर पनपते दर्द के ज्वार को दबाने की कोशिश कर रहा था.

४८१-१६१ बी, विनायक वासुदेव,
ना.म.जोशी मार्ग,
चिंचपोकली, मुंबई-४०००११
मो. - ९८२०७५९०८८

कहानी

'जन्मदिन मुबारक!'

आज कैरी का जन्मदिन था.

जून की उस तपती दोपहरी में, जब थर्मामीटर का पारा एक सौ पांच डिग्री फ़ारेनहाइट जा चढ़ा था, वह ग्लास फ़ैक्टरी के एयरकंडीशंड शो रूम के काउंटर पर बैठी अपने को ख़ुशनसीब समझ रही थी. उसके बाकी साथी बगल के हॉल में, जिसका बड़ा गेट पूरा खुला हुआ था, ग्लास ब्लोअर और भट्ठी के सामने रंग बिरंगे शीशे के फूलों और मर्तबानों को आकार दे रहे थे. गर्म हवा से वह सारा हिस्सा तप रहा था जिसमें आज मौसम की मार भी शामिल थी. फ़ोर्टवर्थ के उस इलाके में आज यूं भी सैलानियों की संख्या कम थी. कुछ एक फ़र्लांग की दूरी पर शहर का वेलकम सेंटर था जहां इस वक़्त पुराने सिक्कों की प्रदर्शनी लगी हुई थी. लोग इस ग्लास फ़ैक्टरी को अनदेखा कर वेलकम सेंटर को कूच कर गये थे. कैरी अपनी सीट पर बैठी उबासियां ले रही थी. दुबली-पतली एवलीना, अपनी पीली स्कर्ट में तपा हुआ चेहरा लेकर उसके पास सरक आयी- 'सचमुच आज बहुत गर्मी है.'

शो रूम से बाहर, पिछवाड़े के हॉल में पांच पुरुष अभी भी एक छोटे से पारदर्शी शीशे के टुकड़े को आकार दे रहे थे. पूरे शो रूम में प्रवेश द्वार से लेकर अंदर के गलियारे और बड़े हॉल में शीशे की मोतियों की माला, ब्रेसलेट, अंगूठी से लेकर पेपरवेट, प्लेटें, बड़े-छोटे फूलदान, शीशे के ही फूलों और ऐसी ही ढेर सारी चीज़ों का साम्राज्य था जो रंगों के एक विचित्र सम्मोहक संसार की रचना कर रहा था, लेकिन अंदर की इस भव्यता का अनुभव उसे ही हो सकता था जो छोटे से अनाकर्षण दरवाज़े को पार कर अंदर पहुंचता.

वह शहर के उस ऐतिहासिक हिस्से का सरकारी शो रूम था.

'हो गया! वाह!' ख़ुशी से भरी एक चीख अंदर के कमरे में रेंग आयी.

कैरेलीन और एवलीन ने सिर घुमा कर देखा. पीटर, जॉन, रोनाल्डो और माइक के चेहरे पर ख़ुशी फैल गयी थी. वे सब एक झुंड में खड़े किसी चीज़ पर झुके थे, जो बॉथम के हाथ में थी. एवलीना भागी-भागी गयी और कुछ ही मिनटों में वापस अंदर आ गयी, 'देखो!'

उसके हाथ में एक दो इंच लंबा पारदर्शी शीशे से बना काले रंग का पेंग्विन था... काली सफ़ेद आंखों और पीली चोंचवाला जो एक इंच के चौकोर शीशे से ही बनी बर्फ़ की चट्टान पर खड़ा था.

'बहुत सुंदर!' कैरी के शांत चेहरे पर मुस्कराहट फैल गयी.

'चालीस डॉलर!' उसकी कीमत का कागज़ चिपका उन्होंने उसे शो केस में रख दिया.

उस कलात्मक वस्तु की यह कीमत अधिक नहीं थी.

बाहर वे सब पुरुष अब फ़िर बिखर गये थे.

।। डॉ. इला प्रसाद ।।

कैरेलीन बस का इंतज़ार कर रही थी. ग्राहकों का उतना नहीं जितना अपने साथियों का. आज उसका मूड उखड़ा-सा है. सुबह से जितने भी लोग यहां आये सबको एवलीना ने ही सामान दिखाया, बेचा. आज काउंटर पर बैठी होकर भी वह जैसे छुट्टी पर है. अपने अंदर डूबी हुई.

अभी शाम के पांच बजते ही वे सब अंदर के कमरे में आ जायेंगे. उसे पता है, वे सब उसका जन्मदिन मनाने वाले हैं. कप केक के डिब्बे अंदर रखे हुए हैं. उपहार भी. उससे छुपाकर. वहीं, उसी शो रूम के दरवाज़े बंद होते ही अंदर का वातावरण जीवंत हो उठेगा. जन्मदिन के गीतों से गूंज उठेगा और सबकी फ़रमाइश पर वह भी कोई गीत गायेगी. सब मिलकर केक खायेंगे. वह उन सब को अपनी तरफ़ से एक-एक रूमाल उपहार में देगी. अपनी सूनी ज़िंदगी को कुछ देर के लिए भूल

जायेगी. अपने बच्चों के बारे में नहीं सोचेगी. समय के उस टुकड़े को दोनों हाथों में थाम लेगी और सीने से लगा लेगी. आज का दिन उसका है. सिर्फ़ उसका. आज वह पैंतीस की हो गयी. यह उम्र कुछ ज़्यादा नहीं है. वह अभी भी फिर से साथी तलाश सकती है. बॉथम तो उसमें दिलचस्पी लेने लगा है, लेकिन वह अब सिर्फ़ किसी ब्वायफ्रेंड पर नहीं अटकना चाहती. फिर से शादी करना चाहती है. इसीलिए बॉथम को दूर से तौल रही है. वह ख़ुशमिजाज इंसान है. जम कर काम करता है और अपने कालिख लगे चेहरे में भी सुंदर-आकर्षक लगता है. वे आज बात कर सकते हैं. यह अवसर अच्छा है. वे साथ-साथ लौट सकते हैं. बॉथम की कार में. इसीलिए वह आज कार लेकर नहीं आयी. यदि बॉथम ने नहीं ही पूछा तो एवलीना की सहायता ले लेगी. एवलीना उससे दस साल छोटी है, लेकिन बहुत समझदार है. भली है.

उसके दिमाग में गाना चलने लगा, 'इट्स सो इजी टू फ़ॉल इन लव... इट्स सो इजी...'

वह इंतज़ार कर रही है.

अब पांच बजने ही वाले हैं. आज यूं भी शनिवार है. शो रूम जल्द बंद हो जाता है. शहर के इस ऐतिहासिक हिस्से में जो भी दुकानें हैं, सब सरकारी हैं और इसलिए वे कुछ अधिक स्वतंत्र हैं.

'इधर से आओ.' एक स्त्री अपने मित्रों को रास्ता दिखा रही थी.

कैरी की निगाहें खिड़की के बाहर गयीं. तीन लोग थे. दो स्त्रियां, एक पुरुष. एक स्त्री ने सफ़ेद स्कर्ट पर काला ब्लाउज पहन रखा था. दूसरी ने, जो अपेक्षाकृत कम उम्र थी, सफ़ेद शर्ट और काली जीन्स पहन रखी थी. साथ का पुरुष सफ़ेद शर्ट और भूरी पैंट में, टोपी लगाये हुए था. गर्मियों में, जब साढ़े आठ से पहले रात नहीं होती, धूप अभी भी आंखों में चमक रही थी. तीनों के चेहरों पर धूप का चश्मा था और उनकी वेषभूषा और शक्ल से अंदाजा लगाना कठिन था कि वे किस देश से हैं. स्पैनिश हैं, मेक्सिकन हैं या इंडियन. जेब खाली करेंगे या सिर्फ़ घूम-फिर कर चले जायेंगे. उसने घड़ी देखी. पौने पांच. बस पंद्रह मिनट. फिर वह उन्हें जाने को कह सकती है. वह तैयार होने काउंटर से पीछे अंदर के कमरे में चली गयी.

डॉ. इला प्रसाद

३ जून, रांची (झारखंड);
एम.एससी.(भौतिकी) रांची, वि.वि.,
पीएच.डी.(भौतिकी) काशी, हिंदू वि.वि.

लेखन : छात्र जीवन से लेखन की शुरुआत. आरंभ में कॉलेज पत्रिका एवं आकाशवाणी तक सीमित. साहित्य की कई विधाओं, कविता, कहानी, आलेख में एक साथ सक्रिय. विवाहोपरांत अमेरिका आने के बाद लेखन में गति आयी. अब तक भारत सहित देश/विदेश की लगभग सभी प्रमुख पत्रिकाओं/ वेब पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित. अमेरिका की पत्रिका 'हिंदू जगत' में संपादक सहयोग. कनाडा की पत्रिका 'हिंदी चेतना' के कामिल बुल्के विशेषांक में संपादन सहयोग. भारत की पत्रिका 'शोध-दिशा' के अमेरिकी प्रवासी कथाकार अंक का संपादन.

प्रकाशन : 'धूप का टुकड़ा'(कविता संग्रह), 'इस कहानी का अंत नहीं' (कहानी सं.) 'उस स्त्री का नाम' (कविता संग्रह).

अन्य : कुछ वर्षों तक आई.आई.टी. मुंबई में शोधकार्य, देश-विदेश की प्रमुख शोध पत्रिकाओं में शोध पत्र प्रकाशित.

संप्रति : अध्यापन (भौतिकी). लोन स्टार कॉलेज सिस्टम से संबद्ध.

जब अजय, नेहा और विभा लाल ईंटों से बनी उस छोटी इमारत में घुसे तो उन्हें अंदाजा नहीं था कि सामने ऐसा जादुई लोक दिखाई देगा. रेस्त्रां में भोजन के बाद से वे बस सड़कों पर भटक रहे थे. पूरे सप्ताह भर कांटीनेंटल भोजन के बाद आज अच्छा भारतीय भोजन मिला था और तीनों ने जमकर खाया था. पिछले एक सप्ताह से वे इस शहर में थे. सप्ताहांत में, पहली बार, शहर का हाल जानने का मौका मिला था,

वरना पूरा सप्ताह ऑफ़िस की मीटिंगों की भेंट चढ़ गया था. सुबह से रात तक काम ही काम और फिर थक कर होटल वापस आ कर सो रहना. सोमवार को आख़िरी मीटिंग थी और उसी रात की पहली फ़्लाइट से वे अपने-अपने शहर को विदा हो जानेवाले थे. अजय और विभा का परिचय अब पुराना हो चला था, इतना कि वे एक दूसरे का राई-रत्ती हाल जानते थे. बस शादी करना बाकी था.

तारीख़ें तय हो चुकी थीं और वे अब खुलेआम प्रेमियों की भांति साथ-साथ घूम रहे थे. आज अजय का जन्मदिन था और इसी उपलक्ष्य में उससे दावत ली गयी थी. अपने शहर में होता तो केक काटा होता. धूमधाम से जन्मदिन मनाया होता. सुबह-सुबह ही, जब सो कर उठा था, कई फ़ोन आ गये थे. जन्मदिन की बधाइयों वाले. आज पहली बार था कि वह घर से बाहर था. रोज-रोज न भी मिले तो भी ऐसे मौकों पर पूरा परिवार इकट्ठा होता है. पश्चिमी माहौल में, इसी देश में पलने-बढ़ने के बावजूद वह अपने भारतीय संस्कारों और पारिवारिक जीवन मूल्यों से अभी भी बहुत हद तक बंधा हुआ है. आज तो उनके मनपसंद चॉकलेट केक के बिना जन्मदिन मन गया था. विभा और नेहा दोनों ने मिलकर उसे कल ही जे.सी.पेनी के आउटलेट स्टोर में एक शर्ट पसंद करवाई थी और बहुत कुछ उसने ख़ुद भी ख़रीद लिया था. विभा और नेहा भी यहां तक पहुंचने के पहले ही अपनी जेबें ढीली कर चुकी थीं.

नेहा इस ग्रुप में नयी थी. यहां आकर पहली बार उनसे परिचित हुई थी और जल्द ही घुलमिल गयी थी. सारे वक़्त अपनी छोटी सी बिटिया की बातें करती, जिसे वह घर पर अपने पति गौतम के साथ छोड़ आयी थी. तपती हुई दुपहर में वे खाना खाने निकले थे और तुरंत वापस होटल लौटने की इच्छा तीनों में से किसी की नहीं थी. अजय ने वेलकम सेंटर से ढेर सारी जानकारियां शहर के बारे में इकट्ठी की थीं और वे तीनों शहर का नक्शा साथ लिये घूमते फिर रहे थे.

'यहां, इस जगह है वो शीशे की फ़ैक्टरी.' नेहा ने कार रुकवायी थी.

'पहले देख तो लो कि बंद है या खुली.' विभा और अजय एक ही साथ बोले थे.

वह बच्चों की-सी फुरती से आगे गयी और वहीं से पुकारा- 'खुली है. आ जाओ, यहां, इधर से.'

अंदर घुसते ही तपे हुए शरीर और मन को गहरी शांति का अनुभव हुआ. इतनी ठंडक थी वहां. आंखों के लिए भी. रंगों का इंद्रधनुषी संसार!

वे घूम-घूम कर एक-एक चीज़ को उठा-उठा कर, कभी आगे से तो कभी पीछे लौटकर देखने लगे. परखने लगे. बहुत सुंदर! क्या कलात्मकता है. कितना सुंदर है न ?

'बाहर निकलने के पहले जरा ठंडे हो लें. कितनी तो गर्मी है बाहर. तप गये.' विभा बोली.

'तुम्हें कुछ खरीदना है?' अजय ने पूछा.

'न नहीं, इतने डॉलर नहीं पास में. बहुत महंगा है सब कुछ यहां.' वह बोली.

'मैं ये शीशे के टुकड़े लूंगी, विदिशा के लिए.' नेहा ने कहा और एक बड़ी सी प्लेट में रखे रंग-बिरंगे ग्लास के टुकड़े चुनने लगी.

एवलीना ने ग्राहक पहचाना. तुरंत करीब आयी- 'हाय!'

नेहा तब तक उनकी कीमत देख रही थी.

'हाय. मुझे कुछ टुकड़े खरीदने हैं. मेरी एक छोटी-सी बेटी है, उसके लिए. लेकिन तय नहीं कर पा रही कि कौन से लूं.'

'आप इस शहर में बाहर से आये हैं?'

'हां और हमारे पास आज का ही दिन है घूमने के लिए.'

'कहां से आये हैं?'

मैं कैलीफ़ोर्निया से. ये दोनों कॉरपस क्रिस्टी से.

'अच्छा, तो तुम दूसरे देश से हो.' एवलीना की आंखें दिलचस्पी दिखाती हुई गोल हो गयीं.

नेहा चकित रह गयी. बोली कुछ नहीं.

उसके वहां से हटते ही वह अजय और विभा से मुखातिब हुई.

'सुना, क्या बोल रही थी? मैं दूसरे देश से हूं.'

तीनों हंसे.

'हां, तो टेक्सास एक देश है न. तुम दूसरे देश से हो. काउ ब्वायज की इतनी ही समझ होती है!'

'ख़ैरियत है कि दूसरी दुनिया नहीं कहा. इनके लिए टेक्सास राज्य ही पूरी दुनिया है.'

'कभी इस शहर से बाहर भी नहीं गये होंगे.

ग़रीब लोग!'

वे फिर हंसे. एक दबी हंसी. एवलीना की नज़र बचाकर.

फिर नेहा की निगाह बंद शो केस में रखे पेंग्विन पर पड़ी. 'हाउ क्यूट!'

तीनों ने सिर हिलाया.

'बहुत महंगा है.'

'खूबसूरत भी है. कोई अभ्यस्त, अपने काम में कुशल कलाकार ही इतनी सुंदर चीज़ बना सकता है.' विभा ने राय दी.

'इतना ख़र्च नहीं कर सकती. पूछती हूं, यदि वह कुछ दाम घटा दे.' नेहा काउंटर पर जाकर एवलीना को फिर से समझाने लगी कि वह अपनी बेटी को यहां कितना मिस कर रही है और वहां वह किस तरह इंतजार कर रही है कि मॉम दूसरे शहर से लौटकर आयेगी तो उसके लिए बहुत सारी अच्छी-अच्छी चीज़ें लेकर आयेगी. उसे कुछ ज़रूर ख़रीदना है. यह बहुत सुंदर है. विदिशा ख़ुश हो जायेगी, लेकिन यह कुछ महंगा लगता है. क्या वह कुछ कम नहीं कर सकती?

एवलीना अंदर गयी. बाहर आयी. तब तक तीनों ने देख लिया कि पिछवाड़े पूरी फ़ैक्ट्री है और एक से एक नायाब चीज़ें बन रही हैं वहां. लेकिन बाहर बेहद गर्मी थी. पूरा हॉल भट्ठी सा तप रहा था.

वे उसके साथ बाहर जाकर भी तुरंत, उससे पहले ही, वापस शो रूम में आ गये.

'पैंतीस डॉलर.' एवलीना ने अंतिम कीमत बतलायी.

नेहा ने उस पर से ध्यान हटा लिया और रंग बिरंगे-शीशे के कलात्मक टुकड़े चुनने लगी. एक टुकड़ा एक डॉलर का.

'तीन डॉलर तो ख़र्च किये ही जा सकते है!' उसने विभा से कहा.

सहसा एक गर्म हवा का झोंका अंदर आया और पांचों मेकेनिक जो अब तक बाहर काम कर रहे थे. अंदर दाखिल हुए. काउंटर पर एक लड़की अपने काले गाउन में मुस्कुराती हुई आ खड़ी हुई.

पांचों ने उसके सामने एक घेरा सा बनाया एवलीना के साथ और पूरा कमरा समवेत स्वर से गूंज उठा, 'हैप्पी बर्थ-डे टू यू कैरी.'

अजय, विभा और नेहा की निगाहें पीछे घूम

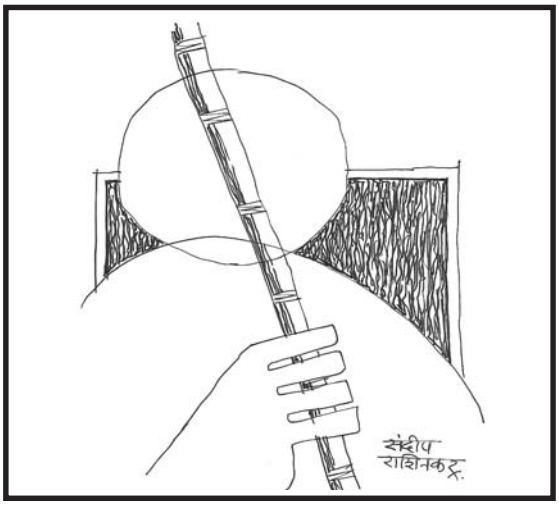

गयीं. वे ख़ुश थे, वे गा रहे थे.

समवेत उल्लास से भरे स्वर, तालियां. कमरे का माहौल पूरी तरह बदल चुका था. पांच बज चुके थे. शो रूम के बाहर 'क्लोज्ड' का बोर्ड लटक चुका था.

'हैप्पी बर्थ-डे टू यू डियर कैरी.'

उन तीनों ने भी मुस्कुरा कर इस बार तालियां बजाने में उनका साथ दिया. वे सब कैरी के सामने एक ओर खड़े थे.

अजय, विभा और नेहा कमरे के दूसरे छोर पर. उससे मुखातिब.

विभा को लगा, ऐसा जन्मदिन का उत्सव उसने कभी नहीं देखा. आंखों से फूटती ख़ुशी. दिन भर की थकान के बाद हंसते हुए चेहरे. इतनी जीववंता, ख़ुशी उसने कभी नहीं देखी. पिछले पांच सालों से अजय ने अपने हर जन्मदिन पर उसे आमंत्रित किया है. बड़े-बड़े आयोजन. तब भी कभी ऐसा नहीं लगा. इतने ख़ुश लोग. वह अजय को ऐसा ही एक जन्मदिन देना चाहती थी. सब जन्मदिनों से अलग. अविस्मरणीय!

वह दौड़ कर आगे गयी. 'हैप्पी बर्थ-डे.' उसने कैरी से कहा और फिर जोड़ा, 'आज उसका भी जन्मदिन है.' उसने अजय की ओर इशारा किया.

वे थमे. उन्होंने मुड़ कर देखा. पूछा, 'क्या नाम है उसका?'

'अजय.'

'तुम मुझे जे कह सकते हो', अजय ने उन्हें अपनी ओर देखता पाकर संकोच भरी मुस्कुराहट से कहा.

दो ग़ज़लें

✍ मदन मोहन शर्मा 'अरविंद'

(१)

हाथ गैरों से मिलाया आप तो ऐसे न थे,
क्या कहा, क्या कर दिखाया आप तो ऐसे न थे।

कश्तियां डूबीं अगर तो भूल थी मझधार की,
काम साहिल का बताया आप तो ऐसे न थे।

भेड़िया जिन बस्तियों के पास तक आया नहीं,
रात भर उनको जगाया आप तो ऐसे न थे।

दोस्तों की पीठ में खंजर उतारे और फिर,
दोस्ती का हक जताया आप तो ऐसे न थे।

शोख वादों की, वफा की, सादगी की आड़ में,
लूटना किसने सिखाया आप तो ऐसे न थे।

(२)

सूखते लब हो गये तर, मैं चला तुम भी चलो,
बूंद को करने समंदर मैं चला तुम भी चलो।

मुद्दतों के बाद कोई हाथ आया हाथ में,
प्यार की पगडंडियों पर मैं चला तुम भी चलो।

जिस जगह मिटने लगें दिल से दिलों की दूरियां,
बात उस दर की चला कर मैं चला तुम भी चलो।

हमसफर चाहे न हो फिर भी सफर तनहा नहीं,
साथ है अपना मुकद्दर मैं चला तुम भी चलो।

क्यों अकेला पत्थरों की भीड़ में पिसता रहूं,
अब किसी इन्सान के घर मैं चला तुम भी चलो।

✍ सी-६९, श्रीबालाजीपुरम, मथुरा-२८१००६.

अब वे अजय से मुखातिब थे. समवेत स्वर में गा रहे थे- 'हैप्पी बर्थ-डे टू यू. हैप्पी बर्थ-डे टू यू डियर जे. हैप्पी बर्थ-डे टू यू.'

एवलीना दौड़कर आगे आयी,' यह कप केक तुम्हारे लिए.'

केक का एक कप अब अजय के हाथों में था, उसका प्रिय चॉकलेट केक!

वे और आगे बढ़ आये. नेहा और विभा के लिए भी केक ले आये.

'हमारे पास पूरा डब्बा है. दर्ज़न केकों का.'

'धन्यवाद.' विभा और नेहा ने अजय के केक का ही एक बहुत छोटा टुकड़ा तोड़ लिया.

वे आपस में हंसते हुए, बातें करते हुए खाने लगे. वहीं ज़मीन पर लाइन से बैठकर. चेहरों पर हल्की कालिख, गंदे कपड़ों में वे फ़र्श पर आराम से बैठे थे. पैर फैलाकर कर. चेहरों पर निश्चिंतता का भाव. कमरे की ठंडक अब उनके चेहरे पर तैर आयी थी.

नेहा ने तीन कलात्मक टुकड़े चुन लिये थे. वह उनकी कीमत चुकाने के लिए काउंटर पर गयी.

'नहीं, ये हमारी तरफ से गिफ़्ट हैं. तुम्हारी बेटी के लिए.' बड़ी गर्मजोशी से, हंसते हुए, एवलीना ने नेहा का हाथ अपने दोनों हाथों में ले लिया.

एक हंसी नेहा के चेहरे पर भी फैल आयी. वह निःशब्द उसे देखते रही.

एवलीना ने सावधानी से उन टुकड़ों को पैक किया और उसे नेहा को वापस कर दिया.

'थैंक यू!'

विभा ने अपना पर्स टटोला, काश, उन्हें देने के लिए उसके पास भी कुछ होता !.....

कैरी अब भी काउंटर पर खड़ी मुस्करा रही थी.

उन्होंने उन सब को हाथ हिलाया, 'बाय-बाय, थैंक यू' और वे तीनों कमरे से बाहर निकल आये

प्रत्युतर में हिलते हुए कई हाथ देर तक उनका पीछा करते रहे.

बाहर धूप बहुत ख़ूबसूरत थी!

12934 Meadow Run,
Houston, TX 77066 (USA)
e-mail : ila_prasad@yahoo.com

कहानी

पांचवी कथा

शाम का धुंधलका पसरने लगा था.

सड़क वही थी.... पुल भी वही था... आस-पास की झोपड़पट्टियों में दिन भर के थके हारे लोगों का आना शुरू हो गया था. सर्वत्र एक गहन कोलाहल प्रसारित था... पर जो भी पुल के पास से गुज़रता, एक मध्यम आवाज़ सुनकर वहीं ठिठककर खड़ा हो जाता. कई लोग पुल के नीचे उचक-उचक कर देख रहे थे. राहगीरों और वहां के निवासियों का मजमा-सा लगा था.

और.... पुल के नीचे से लगातार एक मासूम बच्चे का मर्मांतक रूदन फूट रहा था.

'हे ईश्वर! न जाने कौन पत्थर दिल इस मासूम को यहां मरने छोड़ गया?'

चौक पर चाय की दुकान चलानेवाले अजबलाल ने सफ़ेद कपड़े में लिपटे रक्त से सने नन्हें बच्चे को उठाकर कलेजे से लगा लिया था.

'बहुत पापी होते हैं इस संसार में!' वर्षों से एक बच्चे को तरसती अजबलाल की पत्नी रानी ने जैसे अपने मन के घाव को सहलाया था.

'लड़की है...लड़की!'

अजबलाल ने ज़ोर से कहा तो भीड़ में एक पल को सन्नाटा छा गया... फिर गहन कोलाहल....

'पापी! सत्यानाश हो उसका जो इसे पानी में फेंक गया!'

'क्या होगा इसका?'

'लड़की है न...!'

'अरे! कोई पुलिस को तो ख़बर करो.'

पुलिस वहां पहुंची तो दारोगा ने तुरंत शहर की 'चाइल्ड केयर' संस्था को फ़ोन कर दिया.

संस्था की अध्यक्षा उषा जी ने फ़ोन उठाया, तो जो सूचना मिली उसने उन्हें भी जड़ बना दिया, 'न जाने मानवीय संवेदना उस क्षण क्यों मर जाती है जब मनुष्य ऐसे कृत्य को अंजाम देना चाहता है? एक लड़की को न जाने कब तक ऐसी विडंबनाओं से साक्षात्कार करना होगा?'

एक ठंडी सांस भरकर उन्होंने संस्था के कार्यकर्ताओं को घटनास्थल पर भेज दिया.

एक दिन की नन्हीं बच्ची चाइल्ड केयर संस्था में पहुंच गयी... वहां से सदर अस्पताल. बच्ची की सांस रुक-रुक कर चल रही थी. रानी और उसके पति ने एक पल के लिए बच्ची का साथ नहीं छोड़ा था. मन में भारी बवंडर लिये दोनों चुपचाप सब कुछ देख रहे थे. देर रात में बच्ची की हालत सुधर गयी.... उस नन्हीं की सांसें जैसे रानी की सांसों में घुलमिल गयी थीं. उषा जी भी दो घंटे से वहां बैठी बच्ची के स्वस्थ होने की प्रतीक्षा में ही थीं.

।। डॉ. निरुपमा राय ।।

'इसे अनाथालय में पहुंचा दो... कल ऑफिस ऑवर में पूरी रिपोर्ट मिल जानी चाहिए मुझे... ठीक है?' निर्देश देकर उषा जी जाने लगीं तो रानी और उसका पति उनके पांव पर गिर पड़े...'मैडम! यह बच्ची हमें सौंप दीजिए. हम पालेंगे इसे... अनाथालय मत भेजिए.'

न जाने क्यों उषा जी को भी लगा कि बच्ची इसी दंपती के साथ सुरक्षित रहेगी. उन्होंने कहा, 'हमारी संस्था बच्चों की सही देखभाल के लिए कटिबद्ध है. अगर पालक मां-बाप मिल जायें तो इससे अच्छा क्या होगा. आप लोग इसे गोद लेने संबंधी आवश्यक जानकारी के लिए कल कार्यालय आ जायें... कल बच्ची आपको मिल जायेगी.

रानी को जैसे मन मांगी मुराद मिल गयी.

उषा जी ने भी चैन की सांस ली.

अबोध बच्ची को परिवार मिल गया.

तो क्या कहानी यहीं ख़त्म हो गयी?

नहीं.... कहानी, कथा जो कह लीजिए, वो तो अब शुरू होगी....

रात दो बजे फ़ोन की तेज़ घंटी से चौंककर उषा जी उठीं. ऐसे फ़ोन कॉल्स की उन्हें आदत थी. ज़रूर, कोई बच्चा परिवार से बिछड़कर भटकता मिला होगा... या कोई लड़की घृणित पेशे से छुड़ाई गयी होगी... या फिर किसी कूड़े के ढेर में... सड़क किनारे... गड्ढे या नदी-नाले में कोई नन्हीं जान पड़ी होगी. उन्होंने फ़ोन उठाया, 'हलो!'

'मैडम! मैं रानी...'

'रानी! वही न जो दो-तीन महीने पहले बच्ची को गोद ले गयी थी?'

'जी हां मैडम! मैं...'

'बोलो.... क्या बच्ची को कुछ हो गया है? इतनी रात में फ़ोन क्यों किया है?' उधर से रानी ने जो कहा उसे सुनकर उषा जी सोच में पड़ गयीं.

सुबह रानी पति के साथ कार्यालय पहुंची.

'मैडम! न जाने कैसे, कहां से पता लगा कर बच्ची का बाप कल रात मेरे घर धमक गया... रात बारह बज रहे थे. शराब के नशे में चूर था... धमकी दे रहा था कि या तो हम उसे पंद्रह-बीस हज़ार रुपये दे दें... नहीं तो वो हम पर बच्ची चुराने का केस कर देगा... हम क्या करें मैडम? हाथ जोड़े अजबलाल ने कहा. बच्ची को स्नेह से कलेजे से भींचे रानी रोती जा रही थी.

'मैडम... तीन महीनों से पाल रही हूं मुन्नी को... मैं इसके बिना जी नहीं पाऊंगी... अब तो ये मुझे पहचानने भी लगी है.'

'वो कुछ नहीं कर सकता. वैसे भी बच्ची तुम्हें चाइल्ड केयर ने सौंपी है. घबराओ नहीं, ज़्यादा चालाकी दिखायेगा तो बच्ची को मारने का प्रयास करने के जुर्म में उसी पर मुकदमा ठोंक दिया जायेगा.'

उषा जी ने रानी और उसके पति को समझा-बुझाकर भेज दिया. फिर घटनाक्रम बहुत तेज़ी से घटा... बच्ची का पिता और उसकी नानी दूसरे ही दिन उषा जी के कार्यालय में आ धमके. रानी और उसका पति अजबलाल बच्ची को गोद में अमूल्य निधि की तरह भींचे वहीं उपस्थित थे. बच्ची का बाप व्यर्थ का प्रलाप कर रहा था. बच्ची के बिछड़ने के भय से रानी का मन बुरी तरह कांप रहा था. अजबलाल मौन था. बच्ची की नानी विगत की घटनाएं बताती रो रही थी और उषा जी

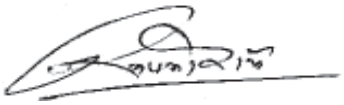

'कथाबिंब' की हितैषी एवं नियमित कथाकार.

किंकर्त्तव्यविमूढ़ सी बैठी थीं... और इन सब की भावनाओं की पृष्ठभूमि में एक दूसरी ही कथा की किरचें पड़ी हुई थीं.

एक स्त्री जन्म से लेकर मृत्युपर्यंत एक कथा ही तो होती है. अपनी पीड़ा, ख़ुशी... आक्रोश... व्यथा... क्रोध... मौन को अभिव्यक्त करने का प्रयास करती जीवंत कथा. कभी-कभी एक कहानी कई कहानियों की सर्जक हो जाती है. पांचवी कथा का बीज भी तभी पड़ गया था जब मालती...चार बेटियों की मां मालती, पांचवी बार गर्भवती हुई थी.

अठारह वर्ष की उम्र में ब्याह कर... मादक स्वप्न पलकों पर सहेजे मालती जब ससुराल आयी तो जीवन उमंगों से भरा था. युवती से स्त्री, फिर मां बनी... पांच वर्षों में चार बेटियों की मां!

'कर्मजली! लड़कियां रख दी हैं.... छाती पर मूंग दलने. न जाने वंश-बेल कब बढ़ेगी?'

पति की फटकार के साथ मालती पांचवी बार गर्भवती हुई. पति ने अपना फैसला तभी सुना दिया था.

'लड़की हुई तो जान से मार डालूंगा तुझे और तेरी बेटी को भी. टुकड़े-टुकड़े कर डालूंगा...समझी?'

'ये सब क्या मेरे हाथ में है?' मालती चाहकर भी कह कहां पायी थी. पिछली बार मुंह खोलने पर जो दंड मिला था उसका स्मरण वाणी पर मौन का भार जो रख गया था. फिर तो सात महीने भारी ऊहापोह में बीते. कभी मन में विचार आता.... इस बार लड़का ही होगा और आगत ख़ुशी की आहट महसूस कर वह

ख़ुशी से भर उठती. पर दूसरे ही पल एक नवजात कन्या का ख़्याल मन में बवंडर पैदा कर देता. मन पीड़ा से फट सा जाता... उफ! एक स्त्री होकर एक अजन्मी कन्या के न आने की प्रार्थना! पर होता तो वही है न जो होना है. प्रसव पीड़ा से कम और आंतरिक पीड़ा और भय से ज़्यादा कंपकंपाती थरथराती मालती जब अस्पताल लायी गयी तो उसके साथ उसकी मां गंगा भी थी.

'अम्मा! अगर...?' मालती की पीड़ा भी सहमी हुई थी.

'चुप! शुभ-शुभ बोल... सब ठीक होगा.' सांत्वना के स्वर बेअसर थे.

मालती का पति बेचैन होकर इधर-उधर घूम रहा था.

प्रसव पीड़ा से दोहरी हुई श्रांत, क्लांत मालती नन्हें शिशु का रूदन सुनकर कांप उठी. उसके रोंगटे खड़े हो गये. पता नहीं...?

'बेटी है...' नर्स के इन दो शब्दों ने कमरे में विस्फोट सा कर दिया. दोनों शब्द बर्छी की तरह मालती के सीने में उतर गये. 'हे भगवान!' किसी तरह दो शब्द बोल पायी... और हृदयाघात से चल बसी. कोहराम मच गया.

उसका पति ग़ुस्से से पागल होकर नन्हीं बच्ची का गला दबाने पर उतारू हो गया....दुष्टा! पैदा होते ही मां को खा गयी.... किसी तरह नर्स और गंगा ने बच्ची की जान बचाई. गंगा की बुरी दशा थी, मृत बेटी... पांचवी नातिन.... क्रोधी दामाद... न जाने क्या होगा? बार-बार अपना कलेजा थामती वो विह्वल-सी हो रही थी.

'इसे मुझे दे दीजिए दामाद जी! मैं पाल लूंगी इसे.'

'हां! ताकि जवान हो जाये तो मेरे मत्थे मढ़ दो ब्याहने...क्यों?'

आनन-फानन में मालती की मृत देह एक जीप में रखकर वे सभी अपने घर रवाना हो गये. सफ़ेद पोटली में लिपटी नातिन को कलेजे से भींच गंगा चुपचाप पिछली सीट पर बेटी की मृत देह के पास मौन रूदन समेटते बैठी थी. गाड़ी तेज़ रफ़्तार से भागी जा रही थी.

ठीक पुल के पास.... अचानक मालती का पति पीछे मुड़कर बोला, 'लाओ! लड़की मुझे दो.' गंगा को लगा शायद पिता का हृदय बिन मां की बच्ची के लिए पसीज गया होगा. फिर... क्षण भर में वो घट गया जिसकी कल्पना भी गंगा ने नहीं की थी. मालती के पति ने बच्ची को गाड़ी की खिड़की से बाहर निकालकर... हवा में उछालकर पुल की रेलिंग से नीचे पानी में फेंक दिया.

'ओ मां!' गंगा की तेज़ चीख़ गाड़ी की तेज़ रफ़्तार में गुम हो गयी. कथा समाप्त!

उषा जी सन्न रह गयीं... जड़वत... प्रस्तर प्रतिमा सी निष्प्राण. रानी भी अवाक रह गयी थी. और...

इस कहानी से जुड़ी तीसरी कथा रात दो बजे किये गये रानी के फ़ोन से शुरू होकर धीरे-धीरे आगे बढ़ रही थी...

'तुम पर तो मैं पुलिस केस दर्ज करूंगी... एक नन्हीं बच्ची की इरादतन हत्या के जुर्म में.' ग़ुस्से से उषा जी का बुरा हाल था.

'अरे नहीं मैडम! मेरी सास तो बेटी के गम में पगला गयी है. मैंने उसे फेंका थोड़े ही था... ग़ोद में लेते वक़्त छिटक गयी अभागी.'

'झूठ बोलते शर्म नहीं आती?'

'झूठ? केस तो मैं करूंगा आप सब पर बेटी चुराने के जुर्म में... नहीं तो पैसे देकर मेरा मुंह बंद करवा लो.' वह बेहयाई पर उतर आया था.

'जो जी में आये करो.'

'ठीक है, एक सप्ताह के बाद आऊंगा. तो पैसे तैयार रखना नहीं तो लड़की छीन ले जाऊंगा... बाप हूं, जो चाहूं कर सकता हूं.'

वह पांव पटकता हुआ चला गया था.

उषा जी ने रानी को समझा बुझाकर भेज दिया था, 'बच्ची तुम्हारे साथ ही रहेगी.'

उस रात रानी की नींद जैसे हवा हो गयी थी... पलकों पर रुकती ही नहीं थी. नन्हीं बच्ची का सलोना मुखड़ा देख-देख कर मन वेदना से भरा जा रहा था. सोच रही थी, बांझ होना स्त्री का सबसे बड़ा अभिशाप है. और मैं इस अभिशाप के साथ जी ही तो रही थी... क्यों डाला विधाता ने उसे मेरी गोद में? अब तो वह मुझे पहचानने भी लगी है...कैसे हाथ बढ़ाकर मुस्कुराती है. मम! मम...! अस्फुट शब्दों में जब बोलती है तो मेरे मन में अदभुत तरंगें उठती हैं. महीनों से इसकी नींद से सोती जागती रही हूं इसकी हंसी से हंसती हूं तो इसके रोने से रोती रही हूं... कैसे इसे किसी दूसरे को दे दूं?

रात भर देवी-देवता को गुहारती रानी विकल थी तो उषा जी की आंखों में भी नींद कहां थी? आज उन्हें भी अपना संतानहीन होना बेहद दंश दे रहा था. एक संतान के लिए लोग कितने तीर्थ करते हैं... और दूसरी ओर एक नवजात की दुर्गति करनेवाले पाषाण हृदयी लोगों की भी कमी नहीं. एक और स्त्री थी जो शून्य में निहारती गहन चिंतन में डूबी थी... मालती की बूढ़ी मां... बेटी गयी... और उसकी मौत का कारण बनी वह बच्ची... कितनी सुंदर गोल-मटोल प्यारी सी हो गयी है... और रानी ने कितनी ममता से उसे छाती से लगा रखा था... हे ईश्वर! उसे उसी की गोद में रहने देना!

रात बीत गयी... दूसरी सुबह एक नयी कथा भी साथ लेकर आयी... चौथी कथा कह लीजिए...

बच्ची तेज़ बुख़ार से तप रही थी... नन्हा शरीर निश्चेष्ट-सा पड़ा था. दिन भर माथे पर पट्टियां रखती रानी बेहाल थी... चौक के डॉक्टर से दवा भी ले आयी थी. पर बच्ची का ज्वर कम होने का नाम ही नहीं ले रहा था. जब दो दिनों तक उसका बुखार नहीं उतरा तो उसे सदर अस्पताल में भर्ती करना पड़ा. उषा जी ने तुरंत मदद की... डॉक्टरों का एक दल बच्ची का निरीक्षण कर रहा था. बच्ची की दशा काफी ख़राब थी.

'इसे मस्तिष्क ज्वर है... बुखार दिमाग में चढ़ गया है. कुछ कहा नहीं जा सकता.' डॉक्टरों ने चेताया था.

बच्ची वेंटीलेटर पर थी.

रो-रोकर रानी का बुरा हाल था.

उषा जी की व्यग्रता भी बढ़ती जा रही थी. उस बच्ची के पिता का फ़ोन सुबह ही तो आया था... 'परसों आ रहा हूं मैडम!'

'देखो, बच्ची बहुत बीमार है... तुम आज शाम ही अस्पताल आ जाओ.. पहले उसका बचना ज़रूरी है... बाकी बातें बाद में होंगी...' उषा जी ने कह दिया था. सुनकर रानी बिलख पड़ी थी, 'नहीं मैडम... बच्ची उसे नहीं दूंगी. मैं... घर-द्वार बेचकर भी इसका इलाज करवाऊंगी. यह तो उसी दिन से बीमार है... जब से उस शैतान ने इसे मुझसे छीनने की बात कहीं है.'

शाम तक बच्ची की दशा और बिगड़ गयी थी. सारे प्रयास व्यर्थ जा रहे थे.

बच्ची की नन्हीं देह स्पंदनरहित होकर बिस्तर पर पड़ी थी... मानो जीवन का कोई मोह ही न रहा हो. सारे लोग उसे घेरे बैठे थे मानो वो कहीं से निकल भागेगी.

तभी अस्पताल के परिसर में दो जीपें आकर रुकीं. बच्ची का बाप अपने गांव के मुखिया, सरपंच... और न जाने किन छुटभैय्ये नेताओं के साथ आ धमका था. कंपाउंडर ने आकर बताया तो बच्ची के पांव पर सर पटकती रानी ज़ोर से रो पड़ी.

अचानक डॉक्टर की दृष्टि बच्ची के चेहरे पर पड़ी... चेहरा निस्तेज पीला पड़ता जा रहा था. धड़कनें टटोलीं... नब्ज देखी... आंखें खोलकर निहारा ... सन्न रह गया.

'मैडम! शी इज नो मोर.'

डॉक्टर ने कहा तो एक भयावह सन्नाटा कमरे में पसर गया.... ठीक वैसा ही सन्नाटा जो भीषण आंधी से कुछ क्षण पहले होता है.

'कहां है मेरी बेटी?' उसी क्षण कुछ लोगों के साथ इन सभी कथाओं के सूत्रधार ने प्रवेश किया. और जब पता चला कि बच्ची इस दुनिया में नहीं रही तो उल्टे पांव वापस लौट गया... 'मैं लाश लेने नहीं आया हूं.'

उषा जी की संज्ञा ने तो जैसे उनका साथ ही छोड़ दिया था. हत्प्रभ सी बैठी वे सोच रही थीं, ठीक कहा था रानी ने... शायद नन्हीं बच्ची की आत्मा भी इस सत्य को स्वीकार कर चुकी थी, कि जीवित रही तो उसी के पास जाना होगा जो इस दशा का जिम्मेदार है...तभी तो उधर पिता के पांव अस्पताल की देहरी पर पड़े और इधर बच्ची ने अंतिम सांस ली.

अब कमरे में केवल सन्नाटा था... और पांचवी कथा आकार ले रही थी...

बिस्तर पर नन्हीं मृत देह पड़ी थी.

रानी पति के कंधे पर अर्धमूर्छित अवस्था में निढ़ाल पड़ी थी.

उषा जी आर्द्र आंखों को बार-बार पोंछतीं आवश्यक कार्यवाही में जुटी थीं.

'इसका अंतिम संस्कार...' उन्होंने जैसे ही अपने सहायकों को आदेश दिया रानी की वेदना का बांध टूट गया.

'यह अनाथ नहीं है... हम करेंगे इसका अंतिम संस्कार.' उसने बच्ची को सीने से भींच लिया.

कुछ ही देर बाद रानी बच्ची के साथ अपने घर पर थी... आज उसने उसे नयी फ्रॉक पहनाकर उसका शृंगार भी किया था. फिर दोनों पति-पत्नी उसी पुल के नीचे चल पड़े, जहां बच्ची को पाया था. पीछे लोगों का हुजूम था. शाम गहराकर रात का रूप लेने लगी थी. पुल के पास भारी भीड़ थी.

अजबलाल रोते हुए गहरा गड्ढा खोद रहा था... सब सांस रोककर देख रहे थे. गड्ढा खुद गया.

कई लोगों ने बड़ी मुश्किल से रानी की गोद से बच्ची को छीनकर जतन से उसे गड्ढे में उतार दिया.

फिर... गड्ढे को मिट्टी से पाट दिया गया.

'पानी में नहीं बहाऊंगा इसे... न जाने किस अभिशप्त आत्मा ने नारी रूप धरा था. कहीं फिर बच गयी और .... फिर कष्ट झेलना पड़ा तो...? धरती की गोद ही ठीक है...' अजबलाल के आंसू रुकते ही नहीं थे. पर रानी मौन थी.

आंखों में गीलापन नहीं एक विरोध था.

सहसा वह उठी.... दो मुट्ठी मिट्टी गड्ढे में डाली और आसमान की तरफ हाथ उठाकर ज़ोर से सिसकी भरकर कहा, 'जाओ गुड़िया! पर अगले जन्म में लड़की बनकर कभी मत आना...!'

द्वारा श्री शंभुनाथ झा,
उर्सलाइन कॉन्वेंट रोड, रंगभूमि हाता,
पूर्णिया-८५४३०१
फोन :९४३०९२७४१८, ९७०९४७०१७६

ग़ज़लें

नीरज गोस्वामी

(१)

साथ सच के ही जियेंगे जो कहा करते हैं,
वो उठा कर के सलीबों को चला करते हैं ।

आ पलट देते हैं हम मिल के सियासत जिसमें,
हुक्मरां अपनी रिआया से दगा करते हैं ।

साथ जाता ही नहीं कुछ भी पता है फिर क्यूं,
और मिल जाये हमें रब से दुआ करते हैं ।

धूप भी आये हवाओं को लिये साथ जहां,
सब उसी घर की तमन्ना में जिया करते हैं ।

फूल हाथों में, तबस्सुम को खिला होंठों पर,
तल्खियां सबसे छुपाया यूं सदा करते हैं ।

दोष आंधी को भले तुमने दिये हैं लेकिन,
शाख़ से तो ज़र्द पत्ते खुद गिरा करते हैं ।

इक गुज़ारिश है कि तुम इनको संभाले रखना,
दिल के रिश्ते हैं ये मुश्किल से बना करते हैं ।

चाह मंजिल की हमें क्यूं हो बताओ 'नीरज'.
हमसफ़र बन के मेरे जब वो चला करते हैं ।

(२)

तन्हाई की रातों में कभी याद न आओ,
हारूंगा मुझे मुझसे ही देखो न लड़ाओ ।

तुम राख करो नफरतें जो दिल में बसी हैं,
इस आग से बस्ती के घरों को न जलाओ ।

बाज़ार के भावों पे नज़र जिसकी टिकी है,
चांदी में नहाया न उसे ताज दिखाओ ।

किलकारियां दबती हैं कभी गौर से देखो,
बस्तों से किताबों का ज़रा बोझ घटाओ ।

ये दौड़ है चूहों की यही इसका नियम है,
आगे जो बढ़े सारे उसे मिल के गिराओ ।

बचपन की तुझे फ़िर से बड़ी याद आयेगी,
तुम कोयले की आंच पे रोटी तो पकाओ ।

पुरपेच मुहब्बत की हैं गलियां बड़ी 'नीरज',
गर लौटने का मन है तो मत पांव बढ़ाओ ।

६०८ रीजेंट चैंबर्स,
नरीमन पाइंट, मुंबई-४००२०१

'बुरे से बुरे व्यक्ति में भी एक भली आत्मा होती है!'

– (स्व.) गोपाल दास

(आकाशवाणी पर 'अंधायुग' के पहले प्रस्तोता और निर्देशक, साहित्य के पारखी और रेडियो माध्यम के विशेषज्ञ गोपाल दास से डॉ. त्रिभुवन राय की बातचीत. यह बातचीत २८-२९ जून २००७ को संपन्न हुई.)

(उन दिनों 'अंधायुग' पर काम कर रहा था. वैसे इस काव्य नाटक को लेकर पिछले कई वर्षों से भीतर मंथन चल रहा था. किंतु महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी द्वारा 'पचास वर्षों का साहित्य' में प्रकाशित सनत कुमार के लेख को पढ़ने के बाद लिखने के लिए मन बेचैन हो उठा. पर अपनी प्रवृत्ति के अनुसार लिखने से पहले संबद्ध कृति के पक्ष-विपक्ष में लिखी गयी उपलब्ध पूर्ववर्ती सामग्री को एक बार पुनः टटोलना चाहा. इस प्रक्रिया में सबसे पहले नाटककार के अपने दृष्टिकोण को समझने के लिए उसके साहित्य को उलटते-पुलटते एक दिन 'पश्यंती' में संकलित लेख 'एक घृणा अनेक आयाम' के प्रस्तुत अंक पर टिक गयी.)

■ लगता है, अश्वत्थामा को चित्रित करते-करते खुद कुछ ठिठक गये हो.

क्यों?

(प्रसंग का उल्लेख करते हुए वे, नाटक के प्रथम प्रस्तोता और निर्देशक गोपाल दास जी बोले) –

''अमुक स्थान पर अश्वत्थामा, कुछ कहना चाहता है और तुमने उसे नहीं कहने दिया. मैं संवाद दस बारह बार पढ़ चुका हूं. मुझे लगता है कि कहीं कुछ छूट सा रहा है.'' असहमति जताने पर वे फिर बोले, 'तुम्हारे इस पात्र को मैं जीता रहा हूं, पिछले हफ्ते भर से मैं उसकी ओर से कह सकता हूं कि लेखक कुछ अंश दबा गया है.' फिर हंसकर बोले, 'जल्दी नहीं है, दो तीन दिन बार दोहराना इसे. तुम्हें मालूम है, इस रेडियो नाटक में अश्वत्थामा की भूमिका ख़ुद मैं करूंगा.'

(आठ-दस दिन बाद रिहर्सल में वे मुझे ले गये. उन्होंने अश्वत्थामा के संवाद बार-बार पढ़े और तब अकस्मात मुझे एहसास हुआ कि कहां पर कौन सा कथन जोड़ना है. वे कथन मैंने बाद में जोड़े.

इस अंश को पढ़ने के बाद भीतर दो जिज्ञासाएं पैदा हुईं; एक, नाटक के उस स्थल को चिह्नित करने की जहां नाटककार ने अपने पहले वाले मूल प्रारूप में परिवर्तन किया; दूसरी गोपाल दास जी से मिलने और विस्तृत बातचीत करने की. इस संदर्भ में सबसे पहले मैंने स्मरणीया पुष्पा भारती से संपर्क किया. उनसे नाटक के प्रथम प्रारूप को देखने की इच्छा प्रकट की. मेरी इस इच्छा को तो प्रतिसाद नहीं मिला. हां, गोपाल दास के बारे में उन्होंने जानकारी ज़रूर दी. मैंने उन्हें तुरंत पत्र लिखा. २२ सितंबर के मेरे पत्र के उत्तर में उन्होंने नवंबर अंत तक आने के लिए कहा. यह भी लिखा कि ९२ वर्ष पूरे कर लिये हैं. कुछ समय से स्वास्थ्य अच्छा नहीं चल रहा है.

दुर्भाग्य से नवंबर में जयपुर नहीं जा पाया. होते न होते, यह संयोग जून २००७ में ही संभव हो सका. उन्हें फ़ोन किया. मिलने के लिए उनसे २८-२९ जून का समय मांगा. अस्वस्थता के बावजूद उन्होंने प्रातः ११ बजे आने के लिए कहा. २८ की सुबह निश्चित समय पर मैं 'सेन निवास' पहुंचा. ५-७ मिनट बाद वे भी ड्राइंग रूम में आ गये. उनके भव्य व्यक्तित्व एवं प्रशस्त ललाट को देखकर मैं सहज ही खड़ा हो गया. चरण छूकर उनका संकेत पाकर बैठा ही था कि एक आत्मीय बुजुर्ग की तरह वे झिड़कियां देने लगे कि इतने लंबे समय में मैंने उन्हें पत्र क्यों नहीं लिखा. 'कम से कम इंसानियत के नाते तो पत्र लिख सकते थे.' मेरे पास कोई जवाब नहीं था. मौन सुनता रहा; फिर घर और बच्चों के बारे में सवाल किये. दो चार इधर-उधर की बातों के बाद उनका संकेत पाकर मैंने जिज्ञासा प्रकट करते हुए कहा.)--

■ बाबूजी! सबसे पहले अपनी पारिवारिक पृष्ठभूमि, बचपन और शिक्षा, दीक्षा के संबंध में बतलावें.

जन्म अजमेर में विजयादशमी के दिन १९१४ में हुआ था. पत्नी, जो अब नहीं रहीं, का जन्म उसी वर्ष शिवरात्रि के दिन हुआ था. बचपन अजमेर में ही बीता. वहीं से बी.ए. किया. लखनऊ से अंग्रेजी में एम.ए. किया. मेरे पिता शिवचरण दास जी ऑक्सफोर्ड में पढ़े थे. वे बहुभाषी थे. हिंदू, उर्दू, फारसी, संस्कृत के साथ अंग्रेजी आदि दो चार यूरोपीय भाषाओं के भी अच्छे जानकार थे. मातृभाषा हिंदी ही थी. वे एक अच्छे खिलाड़ी भी थे. अक्सर वे अपने कॉलेज की हर टीम में हुआ करते थे.

परिवार मूलतः अजमेर का ही रहा है. मेरे दादा बाल मुकुंद दास चौंतीस-पैंतीस साल की उम्र में अलवर के दीवान हो गये थे. मेरे पिताजी के सहपाठियों में हिंदी में प्रसिद्ध विद्वान और अमर कहानीकार चंद्रधर शर्मा गुलेरी भी थे.

मैं खत्री हूं. जाति का खत्री. लेकिन १९२८ में मैंने भंगियों के हाथ का पकाया खाना खाया था.

■ एम. ए. के बाद आपने क्या किया?

एम. ए. के बाद टाइम्स ऑफ इंडिया का करेस्पॉन्डेंट बना. अजमेर और राजस्थान के बीच स्टेट्समैन का भी करेस्पॉन्डेंट रहा. असल में टाइम्स ज्वाइन करने के पीछे भी एक मजेदार कहानी थी. मेरा एम.ए. का रिजल्ट आ गया था. पिताजी एक कमरे में अपने अंग्रेज मित्र विलकिन्सिन साहब, जो रेलवे में मेडिकल ऑफिसर थे, से बात कर रहे थे. बातों के दौरान अंग्रेज मित्र बोले, 'सुनो शिवचरण दास टाइम्स ऑफ इंडिया में अजमेर के लिए करेस्पॉन्डेंट की ज़रूरत है.' पिताजी ने कहा, 'आप मेरे लड़के का नाम सजेस्ट करें.' बस मैं संवाददाता बन गया. उन दिनों मैं 'इंडियन क्रिकेट' नाम की पत्रिका के लिए राजस्थान स्पोर्ट्स के संपर्क में भी आया. इसी बीच 'विशाल भारत' के संपादक बनारसी दास चतुर्वेदी के संपर्क में भी आया और उनके लिए एक दो लेख भी लिखे जो उन्हें पसंद आये थे.

■ फिर आप रेडियो में कैसे आ गये?

उन्हीं दिनों दूसरा महायुद्ध शुरू हो गया था. उस समय संवाददाता के रूप में टाइम्स से पैसे भी कम मिलते थे. बस चालीस-पचास रुपये. १९४३ में रेडियो ज्वाइन किया. पहले दिल्ली, फिर इलाहाबाद ढाई साल (१९५५-५८) रहा.

■ उन दिनों इलाहाबाद का साहित्यिक माहौल कैसा था?

उन दिनों इलाहाबाद में साहित्यकारों का जमघट रहा करता था. पंत जी दूसरे, तीसरे दिन घर आकर बैठते थे. महादेवी मुझे भाई कहती थीं. तब भारती उभर रहे थे. परिमल की गोष्ठियां चर्चित हो रही थीं. विरोधियों की ओर से उसे गाली भी कम नहीं मिल रही थी. पंत जी, बच्चन, विजय देव नारायण साही इन लोगों ने मुझे साहित्य के संस्कार दिये, इसे मैं विस्तृत नहीं कर सकता.

■ प्रयाग के साहित्यकारों के साथ चर्चा के दौरान आप अपनी ओर से अक्सर किस बात पर बल देते थे?

इन लोगों के साथ चर्चा के दौरान मेरा आग्रह रहता था. 'बोलचाल के आदर्श शब्दों' पर. मैं प्रायः इस बात पर बल दिया करता था कि रेडियो के लिए उर्दू शब्दों और मुहावरों से परहेज नहीं होना चाहिए.

■ भारती जी ने 'अंधायुग' के संदर्भ में आपका नाम बड़े आदर के साथ लिया है. उनके उल्लेख से प्रतीत होता है, अंधायुग के संवाद में आपने कुछ परिवर्तन करवाया है. मैं जानना चाहता हूं कि आपने कहां और क्यों परिवर्तन पर बल दिया था?

देखिए, आवेश और शोर का अर्थ तब होता है जब उसके पीछे कोई तर्क होता है; अन्यथा शेक्सपियर के शब्दों में उसका कोई मतलब नहीं होता– 'A lot of sound and furry signifying nothing.'

शेक्सपीयर यह भी कहता है कि बुरे से बुरे व्यक्ति में भी एक भली आत्मा होती है– 'There is soul of goodness in all evil.'

प्रायश्चित का भाव कल्मष को धो देता है. अश्वत्थामा में प्रायश्चित का यह भाव दिखाई देता है. भारती की एक ख़ूबी थी. वह जिस बात को सही मानते थे, उसके लिए लड़ना भी जानते थे. अन्याय एवं ग़लत के खिलाफ़ न खड़े होना उनकी नज़रों में कायरता थी. शब्द सिर्फ शब्द नहीं होते. शब्द का भाव, शब्द की लय भी महत्वपूर्ण होते हैं. इसलिए इन्हें अगर न समझें तो आपका ज्ञान सतही होता है. जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद

की कविता 'बापू के आंसू' के इन शब्दों और उनमें निहित लय और भाव पर ध्यान दीजिए –

एक क्षण दो अश्रुकण
लघु मूक निर्मल
ले गया वह पोंछ
विवंचित हाथ से
मानो वेदना के सिंधु दो.

अश्वत्थामा का प्रायश्चित उस सारी तैयारी को वहां ले जाकर पूरा करता है जहां वह कहता है-

केवल मैं साक्षी हूं
मैंने ताड़ों के झुरमुट से छिप कर देखी है
उसकी मृत्यु.

x x x

(सहसा आर्त स्वर में)
लेकिन हाय मैंने यह क्या देखा
तलवों में बाण बिंधते ही
पीप भरा दुर्गंधित नीला रक्त
वैसे ही बहा
जैसा इन जख्मों से अक्सर बहा करता है
चरणों में वैसे ही घाव फूट निकले...
सुनो, मेरे शत्रु कृष्ण सुनो!
मरते समय क्या तुमने इस नर पशु अश्वत्थामा
को अपने ही चरणों पर धारण किया,
अपने ही शोणित से मुझको अभिव्यक्त किया?
जैसे सड़ा रक्त निकल जाने से
फोड़े की टीस पटा जाती है,
वैसे ही मैं अनुभव करता हूं विगत शोक
यह जो अनुभूति मिली है
क्या यह आस्था है?
यह जो अनुभूति मिली है
क्या यह आस्था है?

व्याघ के बाण मारने पर अश्वत्थामा में यह जो परिवर्तन होता है, उसमें जो कलप साकार होती है, जो कसमसाहट और छटपटाहट होती है, वह उसके प्रतिशोध को एक अर्थ देती है. इससे पहले तो वह निरी, प्रतिहिंसा थी जो किसी भी मानवीय अर्थवत्ता तक नहीं ले जाती.

■ बिटिया की सख़्त बीमारी के दौरान 'अंधायुग' को जब आप पहली बार बैठे-बैठे पढ़ गये तो आपको कैसा महसूस हुआ था?

भारती ने कुछ दिन पहले ही 'अंधायुग' को पूरा किया था. उस दिन वह उसकी पांडुलिपि लेकर आये. मैं उसके रेडियो प्रसारण के लिए उत्सुक था. उस दिन बेटी मधु अधिक बेचैन थी. उस रात उसके सिरहाने बैठे-बैठे 'अंधायुग' पूरा पढ़ गया. अश्वत्थामा का पात्र मुझे पूरी तरह हिला गया. लेकिन पढ़ते-पढ़ते लगा, कहीं कुछ रह गया है. अगले कुछ दिनों में उसे कई बार पढ़ा. मेरी धारणा पक्की होती गयी. हफ़्ते भर बाद भारती फिर आये. मधु की तबीयत में कोई सुधार नहीं हुआ था. उन्हें छोड़ने के लिए फाटक तक गया. उनके ठिठकने पर मैंने अपनी बात कही. कृष्ण की हत्या के बाद अश्वत्थामा को कुछ और कहने को था, जो नहीं कहा गया और जिसे बिना कहे चरित्र में संपूर्णता नहीं आती. भारती मानने को तैयार नहीं थे. चलते-चलते मैंने उनसे इतना ही कहा, 'शायद तुम नहीं जानते, पिछले सात दिनों से तुम्हारा यह अश्वत्थामा मैं जीता रहा हूं. उसकी पीड़ा में मेरी पीड़ा ने अभिव्यक्ति पायी है. शायद मेरी बात से सहमत हो!'

भारती उस दिन चले गये. आठ-दस दिन बाद जब वे रिहर्सल सत्र में आये और अश्वत्थामा के (तत्संबद्ध) संवाद को बार-बार पढ़ा तो वह मेरी धारणा से सहमत हो गये और बाद में कुछ संवाद जोड़ दिये.

(मुझे अपनी जिज्ञासा का समाधान मिल गया. कि गोपाल दासजी के सुझाव पर भारती ने 'अंधायुग' में कहां कुछ कथन जोड़े होंगे)

■ नाट्य कृति में वस्तु और रूप में किस को अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं. दोनों के अंतर्संबध पर आपको क्या कहना है?

जो प्रसंग नाटक को ऊपर उठा देते हैं, वे ही उसको प्राणत्व प्रदान करते हैं. रूप का महत्त्व है किंतु शैली से ही कोई कृति ऊंचाई को नहीं पहुंचती. शैली के अतिरिक्त कुछ संदेश एवं भाव महत्वपूर्ण होते हैं. कहां पहुंचना है? क्या बात पाठक तक पहुंचानी है, नाटककार के लिए ही यह जानना ज़रूरी नहीं है, नाटक के भीतर से भी इसका संकेत मिलना आवश्यक है. शेक्सपियर के नाटकों के बारे में अक्सर कहा जाता है – 'पहला दृश्य ही नाटक का विषय प्रवर्तन

कर देता है.'

यही बात अन्य विधाओं पर भी लागू होती है. आकाशवाणी का सफल वार्ताकार वह होता है, जिसको दस-पंद्रह सेकंड सुनकर ही श्रोता के कान खड़े हो जाते हैं. कि आप क्या कहने जा रहे हैं. श्रोता को पकड़ लेना वार्ताकार की ख़ूबी होती है. वार्ता का अंत वह ऐसे शब्दों से करता है कि जो संदेश वह देना चाहता है, श्रोता के भीतर वे अनायास प्रवेश कर जाते हैं.

■ रेडियो कार्यकाल के हिंदी के पक्ष में लिये गये अपने किसी चुनौतीपूर्ण फैसले के संबंध में बतलायेंगे?

मैं छुट्टी पर था. राजा गोपालाचारी का निधन हो गया था. घोषणा हुई कि राजा जी की शवयात्रा निकलेगी तमिलनाडु में. शवयात्रा का आंखों देखा हाल तमिलनाडु तमिल में प्रसारित होगा, शेष भारत में अंग्रेजी में. शेष भारत में अंग्रेजी में ही प्रसारण क्यों? हिंदी में क्यों नहीं? तत्काल और प्रभावी निर्णय लेने के लिए समय बहुत कम था. इसलिए टेलीफ़ोन पर मिनिस्टर की प्रिऑरिटी मांगी गयी. सारे हिंदुस्तान के लिए अंग्रेजी और हिंदी में प्रसारण की अनुमति मिल गयी. अब चुनौती भरा सवाल यह कि तमिलनाडु में हिंदी में प्रसारण करेगा कौन? मैंने छूटते ही सुझाया - मेरे स्टाफ के अरिगपूडि रमेश चौधरी ही प्रसारण क्यों न करें? जब यह बतलाया गया कि चौधरी तो अस्वस्थ है और अस्पताल में है तो मैंने तुरंत कहा, 'वह अस्पताल में मर तो नहीं रहा है. उससे कहो, मैंने चाहा है, वह हिंदी में कमेंटरी करे.' उस समय विविध भारती में दो लड़कियां काम कर रही थीं. एक तेलुगुभाषी और दूसरी तमिलभाषी. अरिगपूडि को उनमें से एक को सहायक के रूप में लेने की सलाह देकर उन्हें बेझिझक आगे बढ़ने के लिए कहा.

३.०० बजे कमेंटरी शुरू हुई. डिप्युटी डाइरेक्टर ने शुरू किया हिंदी में. उधर अरिगपूडि की आवाज़ आ रही थी. हिंदी में इस प्रसारण की बाद में लोगों ने काफी सराहना की.

(इसी तरह की सिद्धांत निष्ठा, अडिगता और चुनौती को स्वीकार करने का साहस उन्होंने तब दिखलाया था, जब उन्होंने टंडन जी को ब्राडकास्ट करने का निर्णय लिया था. इस संदर्भ को उठाते हुए मैंने अगला प्रश्न पूछा)–

■ आकाशवाणी पर प्रसारण के लिए आपने बाबू पुरुषोत्तम दास टंडन को किस तरह से तैयार किया? क्या 'आकाशवाणी' पर उनका वह एक मात्र प्रसारण था?

उन दिनों मैं इलाहाबाद में ही था. मुझे इस बात पर आश्चर्य हो रहा था कि वहीं इलाहाबाद में रहते हुए भी पं. मोतीलाल नेहरू और पं. मदन मोहन मालवीय के साथियों में हिंदी के प्रबल समर्थक, प्रखर वक्ता और स्वंतत्रता सेनानी टंडन जी को कभी नहीं बुलाया गया. यह बात मुझे अखर रही थी. अंततः मैंने तय किया कि आकाशवाणी पर प्रसारण के लिए उन्हें आमंत्रित किया जाये.

संभवतः वह पं. मदन मोहन मालवीय की जयंती थी. उसी अवसर पर उन्हें आमंत्रित करना चाहता था. इसके लिए पहले मैं उनसे दो-तीन बार मिला. यह चौथी या पांचवी भेंट थी. जब मैंने उनसे जयंती की चर्चा की और मालवीय जी से उनके निकट संपर्क भी याद दिलाते हुए उनसे आकाशवाणी पर प्रसारण के लिए अनुरोध किया. उन्होंने पहले तो मुझे तीखी और संदेह भरी नज़रों से देखा, फिर बोले, 'तुम जानते हो, मैं मौजूदा सरकार का कृपापात्र नहीं हूं. कई बुनियादी मामलों में जवाहरलाल जी से मेरा गहरा मतभेद है. कहीं तुम्हें लेने के देने न पड़ जायें.' मैंने उनसे कहा, 'जब तक किसी व्यक्ति अथवा राजनैतिक दल का नाम लेकर निंदा नहीं करते, और आप जैसा सुसंस्कृत व्यक्ति अकारण निंदा क्यों करेगा तब तक भला किसी को आपत्ति क्यों होनी चाहिए. कम से कम मुझे तो बिल्कुल नहीं होगी.'

टंडन जी ने कुतूहल से मेरी ओर देखा. मैंने पुनः आश्वस्त करते हुए उनसे कहा, 'यह मेरी धृष्टता होगी, अगर मैं यह अपेक्षा करूं कि आप वह न कहें, जो सच्चे मन से कहते हैं. आप जो कुछ कहना चाहते हैं, निसंकोच कहें.'

'तुम पर आंच तो नहीं आयेगी?' उन्होंने पूछा.

'जी नहीं, आपके रहते तो बिल्कुल नहीं.'

अंत में मेरा प्रस्ताव स्वीकार करते हुए उन्होंने कहा, 'मैं प्रसारण करूंगा, किंतु हिंदी में.'

लेकिन अभी भी एक बाधा थी. यह मैं जानता था कि वह आशु वक्ता हैं, और लिखकर कभी नहीं बोलते. तब भी मैंने नम्रता के साथ निवेदन किया, प्रसारण के लिए आलेख की ज़रूरत होती है. आप अपनी सुविधा से इसे तैयार कर लें. उन्होंने ग़ुस्से में कहा, तुम जानते हो, मैं लिखकर नहीं बोलता. क्यों घोड़े पर जीन कसना चाहते हो ?

मैंने उनके क्रोध को शांत करते हुए कहा, आलेख की बात तो मैं इसलिए कर रहा था क्योंकि यह हमारे लेखागार की अमूल निधि होगी. मेरे इस तर्क को वह मान गये. लेकिन अंत तक प्रयत्न करके भी वह आलेख तैयार नहीं कर पाये. प्रसारण के दिन उन्होंने कहा, मैं आलेख तैयार करने की बात पूरी नहीं कर पाया. प्रसारण को रद्द किया जा सकता है. इसको कितना प्रचारित कर रखा है. हां, यह सुझाव ज़रूर दिया कि एक कागज़ पर कुछ तथ्य नोट कर लें. लेकिन त्रिभुवन जी इस प्रसंग का समापन और भी रोमांचकारी था.

प्रसारण का समय सायं आठ बजे था. कुल अवधि पंद्रह मिनट की थी. ठीक आठ बजने के बस कुछ सेकंड पहले ही आये. सीधे उन्हें स्टूडियो ले गया. उनके पास कोई कागज़ भी नहीं था.

उन्होंने स्थान ग्रहण किया, आंखें बंद कीं और भावविभोर होकर बोलने लगे. सवा आठ बजने में कुछ क्षण ही शेष रह गये थे और वह धाराप्रवाह बोले जा रहे थे.

सवा आठ हो गये. दिल्ली से समाचार का समय हो गया था. कार्यक्रम अधिकारी बदहवास दौड़ा आया. आदेश चाहता था कि क्या करें ? प्रसारण काट दें? समाचार न लें? मैंने बेधड़क कहा, प्रसारण पूरा होगा. जहां टंडन जी के प्रसारण के रूप में एक अनहोनी हो रही थी वहीं समाचार के रिले न होने की दूसरी अनहोनी हो सकती है.

ठीक ८.१८ पर उन्होंने आंखें खोलीं. घड़ी देखी, चौंके, खिड़की के पार खड़े हुए मुझे देखा और एक अनुभवी वक्ता की तरह वार्ता का स्वाभाविक रूप में समापन किया. वह बाहर आये और शालीनता से कहा, 'लज्जित हूं इस अनुशासनहीनता के प्रदर्शन के लिए. लेकिन क्षमा के लिए उनके हाथ जुड़ पाते, उससे पहले ही मैंने उन्हें अपने हाथों में बांध लिया.

आपको यह भी बता दूं कि उस दिन चार मिनट देर से समाचार आरंभ हुए थे.

■ मतलब यह कि सिद्धांत निष्ठा और सत्य के आगे आपने अपने उच्च पदस्थ अधिकारियों की कोई चिंता नहीं की ?

हां, सही और उचित को अंजाम देने से मैं कभी नहीं हटा. अनुचित और ग़लत का विरोध करने से भी नहीं डरा. इस संबंध में टैगोर शताब्दी की बात लें. इस अवसर पर कार्य की जिम्मेदारी तो मेरे ऊपर डाली गयी, लेकिन चीफ प्रोड्यूसर किसी और को बनाया गया. इस बात को लेकर डायरेक्टर जनरल से मेरा झगड़ा तक हो गया था और उस जिम्मेदारी को मैंने छोड़ दिया. मुझे यह कतई पसंद नहीं था कि सारा काम कोई करे और चीफ प्रोड्यूसर कोई और बनाया जाये. ऊपर से शांतिनिकेतन के दो सहायक परामर्शदाता के रूप में थोप दिये जायें.

■ चीनी आक्रमण के समय आप कहां थे ? उन दिनों आप अपने काम को किस तरह से अंजाम दे रहे थे ?

उन दिनों आसाम में चीनियों के प्रवेश की दहशत थी. आसाम पर वे कब कब्जा कर लेंगे कुछ कहा नहीं जा सकता था. चारों तरफ अफरा-तफरी थी. मैं जनता के दर्द को, उसके तीखेपन को महसूस कर रहा था. वहां के कर्मचारियों के लिए महानिदेशालय की चिंता भी स्वाभाविक थी. तब भी महानिदेशालय को आश्वस्त करते हुए कह दिया था. 'शो विल गो ऑन'– हम तब तक अपना काम जारी रखेंगे जब तक कि हम बंदी नहीं बना लिये जाते अथवा मिटा नहीं दिये जाते.

■ गांधी जन्म शताब्दी के अवसर पर आपने अपनी भूमिका का निर्वाह किस रूप में किया था ?

उन दिनों मैं दिल्ली में ही था. गांधी जी के प्रवचनों की स्क्रिप्ट तैयार की, जो रिटायरमेंट के बाद तबादले में कहीं खो गयी. निष्ठा के साथ मैं काम करता रहा लेकिन जब काम का श्रेय औरों को दिया जाने लगा तब मुझे बुरा लगा, विरोध भी किया, मैंने कहा था, आप जो कर रहे हैं वह अनुचित है. गांधी की वाणी पर असत्य का लेबल कहां तक उचित है. दिवाकर (आर.

आर. दिवाकर) ने तब कहा था, 'मैं आपके दावे का खंडन नहीं करूंगा.'

■ आपने अपने सिद्धांतों से न कभी समझौता किया और न उच्चाधिकारियों की कोई परवाह की, फिर भी आपको एक्सटेंशन भी मिला और प्रोड्यूसर एमिरेटस भी बनाया गया. आख़िर इसके पीछे राज क्या रहा?

प्रोफेसर साहब, देखिए, गाय अगर कटखनी हो तो भी उसका दूध मीठा होता है. इसलिए आदमी काम का हो तो लोग चाहें या न चाहें, उसकी ज़रूरत को नज़र अंदाज नहीं कर सकते. इसलिए उच्चाधिकारियों और मंत्रियों की तनी भौंहों के बावजूद मुझे आदर के साथ जिम्मेदारी सौंपी जाती रही. १९७२-७३ में जब आज़ादी की स्वर्ण जयंती मनायी जा रही थी तब मुझे विशेष रूप से एक्सटेंशन दिया गया. १९८२-८७ के लिए प्रोड्यूसर एमिरेटस बनाया गया.

■ प्रोड्यूसर एमिरेटस बनाये जाने पर आपने किन योजनाओं को पूरा किया ?

एमिरेटस बनाये जाने पर दो-चार स्टैंडर्ड प्रोग्राम बनाये गये. अज्ञेय, बच्चन, महादेवी और अमृत लाल नागर को रिकॉर्ड करवाया गया. इनमें एक का आलेख छपा भी.

एक महत्वपूर्ण काम बाबा आमटे के साक्षात्कार के रूप में पूरा किया. बाबा आमटे की आत्मकथा उनके मुंह से उगलवाना सरल काम नहीं था. वह, जो एक खिलंदड़े स्वभाव का युवक हुआ करता था, अंग्रेजी सूटबूट पहनता था, टैगोर को सुनने कलकत्ता जाता था, अंग्रेज मित्रों की जमकर खिंचाई करता था, मुरलीधर आमटे से बाबा आमटे कैसे बन गया, इसे बाहर ले आना कितना मुश्किल था. इसका अंदाजा लगाया जा सकता है, पहले तो वह बात करने के लिए ही तैयार नहीं थे, फिर कुरेदते-कुरेदते मैंने सभी बातें निकलवा लीं.

रेडियो के दिनों में मैंने एक तीसरा काम यह किया कि आज़ादी के पहले जब उर्दू का राज था हिंदी के लिए संघर्ष किया और अपनी नौकरी को भी ख़तरे में डालकर हिंदी को भरसक बढ़ावा देने का काम किया.

■ दिल्ली के कत्थक केंद्र में आजीवन डायरेक्टर बने रहने का प्रस्ताव पाने पर भी आपने केंद्र को क्यों छोड़ दिया?

दिल्ली के कत्थक केंद्र में बिरजू महराज के साथ वर्षों तक काम किया. उनके साथ काम करते हुए केंद्र को वह ऊंचाई प्रदान की कि कला के विशेषज्ञ और पारखी उसे कला का सर्वश्रेष्ठ केंद्र मानने लगे थे. लेकिन ७३ की उम्र में कपिला वात्स्यायन के आग्रह के बावजूद केंतु को छोड़ दिया, यद्यपि मुझे केंद्र का आजीवन डायरेक्टर बनाने का प्रस्ताव भी मिला था. असल में पैसा कमाना मेरा लक्ष्य कभी नहीं रहा. मैं तो बस कबीर की उस दृढ़ता का कायल रहा, जिसके चलते उसने कहा था –

'दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धरि दीनी चदरिया.'

▸ सेवा निवृत्ति के बाद का कोई अनुभव जब आपने उच्चपदस्थ व्यक्तियों की दखलअंदाजी को दरकिनार करते हुए अपने काम को अंजाम दिया?

इस संबंध में एक वाकया सुनाऊंगा. उन दिनों देश में वर्ल्डकप क्रिकेट का आयोजन हो रहा था. कमेंटरी की टीम के चयन के लिए नवाब पटौदी और स्वरूप किसन के साथ मुझे समिति में रखा गया था. अनेक बड़े-बड़े आकाओं की मार्फत बड़े-बड़े बाहुबलियों के नाम आये. पर हमने इन सभी के नाम काट दिये. यहां तक कि डायरेक्टर जनरल की दखल अंदाजी भी हमने नहीं चलने दी और हमने एक राय से टीम चुनी. बात यह हुई कि रेडियो की बारीकियों के लिए जहां हमारे साथी मेरी बात सुन रहे थे वहां क्रिकेट की बारीकियों के संदर्भ में मैं उन पर निर्भर था. हम किसी की भी दखल अंदाजी स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे, और अंत में अपनी दृष्टि में हमने एक निष्पक्ष टीम चुनी.

■ गांधी जी का आप पर गहरा प्रभाव रहा है. गांधी जी को आपने पहली बार कब देखा था? किस अवस्था में आप पर उनका प्रभाव पड़ने लगा था?

गांधी जी को पहली बार मैंने १९३१ में अजमेर में देखा था. प्रभावित तो उनसे मैं किशोरावस्था में ही हो गया था. यह उनके प्रभाव का ही फल था कि मुश्किल से चौदह वर्ष की उम्र में मैंने भंगियों के हाथ

का पकाया खाना खाया था. बाद में गांधी जी की बीसियों प्रार्थना सभाएं अटेन्ड की थीं. गांधी जी को नोआखाली ने अमर बना दिया. 'कायर की अहिंसा नहीं वीर की अहिंसा चाहिए' को उन्होंने यहां साकार कर दिया था.

■ आज के नेताओं और गांधी जी में आपको सबसे बड़ा फ़र्क क्या नज़र आता है ?

आज के नेताओं और गांधी जी में सबसे बड़ा फ़र्क यह है कि बीसवीं शताब्दी में गांधी जी वे प्रमुख व्यक्ति थे जो वर्णाश्रम के प्रति अपनी पक्षधरता को खुले रूप में कबूल करते थे, पर यहां भी उनकी ख़ूबी यह थी कि वे जातिवाद के कट्टर विरोधी थे जबकि आज के नेता वर्ण का खुलकर विरोध करते हैं और राजनीति के चलते जातिवाद को बढ़ावा देते हैं. यह एक खतरनाक बात है. पर इस ओर ध्यान कौन देता है. असल में आज के नेता बौने ही नहीं घटिया भी हैं और यह घटियापन चारित्रिक है.

■ लखनऊ विश्वविद्यालय से आपने अंग्रेजों के जमाने में अंग्रेजी से एम. ए. किया था. आपकी पारिवारिक पृष्ठभूमि भी अंग्रेजी के काफी अनुकूल थी. तब भी आपने अंग्रेजी को अपने कैरियर का माध्यम क्यों नहीं बनाया ?

देखिए, अंग्रेजी में मैंने चालीस साल पहले लिखना छोड़ दिया. इसकी जड़ में स्वाभिमान वाली बात थी. भारतेंदु की बात, 'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल' बचपन में ही भीतर बैठ गयी थी. फिर गांधी जी की प्रेरणा ने भी मातृभाषा के प्रति मेरी निष्ठा को मजबूती दी.

■ अपने साहित्यिक लेखन के संबंध में कुछ बतलायें?

रिटायरमेंट के बाद मैंने चार किताबें- 'जीवन की धूप छांह', 'मोहे बिसरत नाहीं', 'ध्वनि तरंगों की ताल पर', 'मन के झरोखे से' संस्मरणों की तैयार कीं. दो रेडियो एकांकी की और एक अनुवाद की. अहिंदी भारतीय भाषाओं की नौ लोककथाओं को चुनकर उनो हिंदी में रूपांतरित किया. 'मोहे बिसरत नाहीं' पर राजस्थान साहित्य अकादमी ने वर्ष की श्रेष्ठतम पुस्तक का अवार्ड भी दिया.

■ आपने हिंदी के किन साहित्यकारों को पढ़ा और उनमें सबसे अधिक आपको किसने प्रभावित किया ?

मैंने हिंदी में कबीर को पढ़ा. तुलसी, रहीम, रसखान और ताज को पढ़ा. मेरे जीवन को इन साहित्यकारों ने प्रभावित ही नहीं किया उसे समृद्ध भी बनाया. ताज की भारतीयता और उसका कृष्ण प्रेम तो आज भी भूले नहीं भूलता. कितनी बेफिक्री से उसने कहा था- 'हौं तो मुगलानी पर हिंदुस्तानी रहौंगी.'

कबीर को हाईस्कूल में ही पढ़ा था. उनमें कवित्व तो कम था, पर जो बातें वह बोलता है, वह सीधे आत्मा में पैठ जाती हैं. यह उसके बूते की ही बात थी जो वह बेफिक्री से कहता है- ''मस्जिद ऊपर मुल्ला बांग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय.'' वह तो यहां तक कहता है- ''चींटी के पग ने नेउर बाजे, वह भी साहब सुनता है.''

■ हिंदी की वर्तमान आलोचना के संबंध में आप क्या कहना चाहेंगे?

आज साहित्य में अलोचना कहां होती है? बस विचारधारा की दृष्टि से ही साहित्यकार छोटे और बड़े होते हैं. नामवर सिंह जी हैं, वे तो फ़तवे जारी करनेवालों में सबसे आगे रहते हैं शिवदान सिंह चौहान उनकी तुलना में काफी ऊपर थे.

वर्तमान हिंदी आलोचना के संदर्भ में आपको एक घटना सुनाऊं. प्रेमचंद जयंती के सिलसिले में वामपंथियों के एक सम्मेलन में मुझे बुलाया गया था. भीष्म साहनी वग़ैरह बैठे हुए थे. वहां गांधीजी की आलोचना ही नहीं की गयी, उन्हें जितना भी भला-बुरा कहा जा सकता था, कहा गया. अपनी बारी आने पर मैंने वहां मित्रों से कहा था, प्रेमचंद अगर आज होते तो क्या यह सब सुनते, जो आप लोग उनके नाम पर कह रहे हैं. यही स्थिति मुझे टैगोर जयंती के अवसर पर भी देखने को मिली. लोगों को टैगोर के खिलाफ बोलते सुनकर मुझे आश्चर्य हो रहा था. इम्पायर स्टेट बिल्डिंग सबसे ऊंची है. उसकी ऊंचाई देखने में आपका अपना ही टोप गिर जाता है, फिर टैगोर की ऊंचाई, जो इम्पायर स्टेट बिल्डिंग की ऊंचाई को भी बहुत पीछे छोड़ देती है, उसको देखने का आप दावा कैसे कर सकते हैं?

■ विद्वान आलोचक और रचनाकार में आप

ख़ास फ़र्क क्या महसूस करते हैं?

एक अंतर यह है कि विद्वान याद नहीं रहते, रचनाकार याद रहते हैं. उदाहरण के लिए 'वाणभट्ट की आत्मकथा' के रचनाकार हजारी प्रसाद द्विवेदी को भूल पाना मुश्किल है. असल में रचना अपने प्रणेता को अमर बना देती है.

■ मौजूदा हालात को देखते हुए देश के भविष्य के संबंध में आप क्या सोचते हैं?

त्रिभुवनजी! यह हज़ारों साल पुराना देश है. इसने उतार-चढ़ाव भी बहुत देखे हैं. मौजूदा दौर भी निकल जायेगा. अभी भी यहां सब कुछ चौपट नहीं हुआ है. जब-जब सब कुछ नष्ट होने के कगार पर आता है कोई न कोई ताकत सामने आ ही जाती है. यह मत भूलिए कि 'सब ख़त्म हो जाते हैं एक टूटी टहनी रह जाती है.' इसलिए निराशा की कोई बात नहीं.

(लगभग तीन घंटे का समय बीत चुका था. उनके चेहरे पर थकान भी झलकने लगी थी. बातों का दौर यहीं समाप्त कर उनसे बिदा लेकर उठा. मना करने पर भी चलने लगा तो वे फाटक तक साथ आये. नमस्कार कर चलने लगा तो आत्मीयता से परिपूरित उनका सत्यनिष्ठ दबंग व्यक्तित्व जैसे भीतर कर भीतर बहुत कुछ कहता जा रहा था. इसलिए एक अंतिम प्रश्न पूछ ही लिया.) –

■ क्या जीवन के इस पड़ाव पर भी आपको किसी से कोई शिकायत है?

नहीं. १९९८ में पत्नी के आपरेशन के बाद बेटी के पास शिफ्ट हुआ. ९२ की आयु तक निर्द्वंद्व घूमता था कि जैसे कुछ हुआ ही न हो. लेकिन अब तो जो होना होगा वह होगा ही. जितनी सांसें हैं, उनके साथ चलना होगा. निदा फाजली का शेर है –

रात के बाद नये दिन की सुबह आयेगी.
दिन नहीं बदलेगा, तारीख बदल जायेगी.

अब मुझे कोई शिकायत नहीं है. किसी से भी शिकायत नहीं है.

डॉ. त्रिभुवन नाथ राय,
२-सी-६, सेक्सरिया कंपाउंड,
सखाराम लांजेकर मार्ग,
परेल, मुंबई-४०००१२
मो. ९३२३७३७५५१.

कविता

कही-अनकही

✍ अल्पना सिंह

रातों-रात
आसमान छूने की
चाहत में
बौने हो गये हैं लोग,
कट गये हैं अपने-आप से,
अपनी जड़ों को उखाड़ते हाथ
कही-अनकही व्यथा से
कांपने लगते हैं ख़ुद ही,
अपने सरोकारों
अपने मूल्यों का
ख़ून होते देख ये आंखें
छलछला आती हैं बार-बार
सिमट जाता है इसमें
समूची मानवता का दर्द,
आख़िर किससे कहूं
अपनी व्यथा-कथा
किसके पास समय है
सुनने के लिए?
हर कोई जैसे
भागा जा रहा है अपनी धुन में
सब कुछ भुलाता हुआ
भूलता हुआ सा,
कहीं न कहीं
कुछ तो है
अभी भी,
मेरे माथे पर
बल पड़ जाते हैं
सोचती हूं बार-बार
लिखती हूं मिटाती हूं
जानें क्या-क्या बस यूं ही

द्वारा श्री अंगन सिंह, ४९१-सी, सिटी माल गोदाम रोड, मो. कुंवरपुर, बरेली (उ.प्र.)-२४३००३

बाइस्कोप

फ़िल्मों और रंगमंच से जुड़ा लेखक इम्तेयाज़ हुसैन

✍ सविता बजाज

(साहित्य और फ़िल्म का चोली दामन का साथ है. हमारे विशेष अनुरोध पर जानी मानी फ़िल्म, टी.वी., मंच कलाकारा व पत्रकार सुश्री सविता बजाज 'कथाबिंब' के लिए चलचित्र जगत से संबद्ध साहित्यकारों के साथ बिताये क्षणों को संस्मरण के रूप में प्रस्तुत कर रही हैं. अगले अंकों में पढ़िए सुदर्शन फाकिर, वेद राही, गोपाल शर्मा आदि के बारे में.)

भगवान ने जबसे संसार को रचा, खुद अलग-अलग पात्रों में एक्टर का रूप रच कर इसी संसार के प्राणियों को कठपुतली की तरह नचाता रहा. इस नाच का भेद शायद ही कोई जान पाया हो. नाच में अनगिनत चेहरे समय-समय पर धरती पर अवतरित होते रहे और कला का क्षेत्र विशाल होकर संसार के रचयिता को छूने और पाने की कोशिश करता रहा.

कला के क्षेत्र में रंगमंच और फ़िल्म का अटूट संबंध है. या यूं कह लीजिए चोली दामन का साथ है. दोनों एक दूसरे के पूरक हैं. ठीक यही बात रंगमंच और फ़िल्मों की मशहूर हस्ती 'इम्तेयाज़ हुसैन' के साथ लागू होती है.

जन्म हुआ कैफ़ी आज़मी साहब के गांव भिजवा से दूर, शाहराजापुर लेकिन पांच साल की उम्र में परिवार मुंबई आ गया तो लिहाजा इम्तेयाज़ भी यहीं के होकर रह गये. स्कूल की पढ़ाई कभी डोंगरी के म्युनिसिपल स्कूल में तो कभी ग्वालियर टैंक के इंगलिश स्कूल में पूरी की. बी.ए. की पढ़ाई पहुंची के.सी. कॉलेज तक.

मैं यूं तो इन्हें बरसों से जानती हूं, पहचानती हूं क्योंकि मैं भी तो इन्हीं की दुनियां से आज तक जुड़ी हूं यानि अभिनय, लेखन... लेकिन अफ़सोस इस बात का है कि यह साक्षात्कार लिखने तक न जानती थी कि आपने ही मशहूर फ़िल्म 'परिंदा' के संवाद रचे. सचमुच अपनी नादानी पर अपने आप से खूब खफ़ा हुई क्योंकि मैं किसी दूसरे इम्तेयाज़ को समझे बैठी थी.

इम्तेयाज़ बताने लगे- सविता, जिस तरह श्याम बेनेगल की फ़िल्म 'निशांत' से आप अभिनय में मशहूर हुईं, उसी तरह 'परिंदा' में अपने संवादों की वजह से मैं मशहूर हुआ. स्कूल और कॉलेज के ज़माने से थियेटर से जुड़ा हूं पचासों पात्र किये, ड्रामे लिखे, निर्देशन किया. एक रोज़ एन. सी. पी. ए में मेरे ग्रुप ए. बी. सी. का नाटक 'एक कोट की कहानी' मंचित हुआ तो फ़िल्म निर्देशक, विनोद चोपड़ा ने मुझे

'परिंदा' फ़िल्म, के संवाद लिखने का काम सौंपा. फ़िल्म हिट, मैं भी हिट. मेरी, ज़िंदगी बदल गयी. ढेरों फ़िल्में लिखीं जैसे 'गुलामे मुस्तफ़ा' इसमें पात्र भी किया. 'वास्तव', 'दिल आशना है', 'अनर्थ' वगैरह कीं. किसी के संवाद तो किसी की स्क्रिप्ट. बहुत काम किया. रंगमंच का लेखन और निर्देशन भी नहीं छोड़ा. अभिनय भी नहीं छोड़ा. 'रिवायत' में जज बना हूं. बीस साल की उम्र में 'दायरे मदीना' में फरीदा जलाल के साथ सेकंड लीड में था. यह बात सच है कि मुझे अभिनय में ज़्यादा रुचि नहीं.

आप तो बैंक की नौकरी करते थे न?

कब की छोड़ दी. गाड़ी, घर सब कुछ 'परिंदा' के बाद आ गया था. बच्चे एहतेशाम और मोहित दोनों फ़िल्मों और सीरियलों में, मसरुफ हैं और क्या चाहिए.

थियेटर छोड़ दिया?

- न बाबा न, यह कैसे हो सकता है. 'सेल्समैन रामलाल' तो पूरी दुनिया में धूम मचा रहा है जिसमें सीमा बिस्वास और सतीश कौशिक हैं. आपने देखा क्या? मैंने अपनी नादानी को छुपाने, बात न सुनने का नाटक किया. लेकिन सोचने लगी - सविता, तू थेयटर की होकर थेयटर नहीं करती, क्या जवाब दूं. टिकट महंगे हैं क्या इसलिए नाटक नहीं देखती. ख़ैर बात

इम्तेयाज़ हुसैन

कला स्नातक (मुंबई वि.वि.)

फ़िल्म लेखन	: परिंदा, वास्तव, अस्तित्व, इस रात की सुबह नहीं, वीभत्स, अनर्थ.
कहानी व संवाद	: दिल आशना है, गुलामे मुस्तफा.
सीरियल लेखन	: नया नुक्कड़, फ़र्ज, माफिया, शाहीन.
अन्य	: अनेक नाटकों का रूपांतरण व कुछ मौलिक नाटकों का लेखन व निर्देशन.
सम्मान	: अस्तित्व के लिए सर्वश्रेष्ठ संवाद लेखन का ज़ी सिने अवार्ड; महाराष्ट्र राज्य नाट्य महोत्सव में संवाद लेखक के रुप में कई बार पुरस्कृत.
संप्रति	: ३डी-३०१, ओशिवरा क्लासिक सोसायटी, पाटलिपुत्र नगर, जोगेश्वरी (प.), मुंबई-४००१०२. मो. ९३२२२७६०८८

टल गयी.

ज़िंदगी के बारे में क्या विचार हैं ?

इस्तेयाज़ बोले सांस ही तो खुदा है. पहली सांस गुज़र गयी और आनेवाली सांस का पता नहीं. बाद वाली सांस की बात करना ही बेमानी है. जीवन है तो सभी कुछ संभव है.

आपने बड़ी-बड़ी फ़िल्में लिखी, सीरियल लिखे लेकिन आसमां छूने जैसी बात क्यों न हुई?

मैं आज तक किसी के दर पर काम मांगने नहीं गया. शायद यही वजह हो.

लेखन की दुनियां में सबसे बड़ी, अमूल्य बात क्या है?

लेखक सबसे बड़ा होता है. अगर राइटर ने अच्छी फ़िल्म लिखी तो दर्शक उसे बार-बार देखते हैं. अच्छी किताब लिखी- पाठक बार-बार पढ़ते हैं.

कोई तमन्ना?

हां, फ़िल्म का निर्देशन करना चाहता हूं. और चाहता हूं कोई मेरे लिखे ड्रामे प्रकाशित कर दे.

पो. बॉक्स-१९७४३, जयराज नगर,
बोरिवली (प.), मुंबई-४०००९१
फोन : ९२२३२०६३५६

: प्राप्ति-स्वीकार :

सक्षमता (उपन्यास) : **राज बिबरा,** उड़ान पब्लिकेशन्स, मानसा-१५१५०५. मू. २७५ रु.

सहर हुई तो (कहानी सं.) : **मंगला रामचंद्रन,** किताब घर, २४/४८५५, अंसारी रोड, नयी दिल्ली-११०००२. मू. १५० रु.

खूंटे से समाधि तक (कहानी सं.) : **डॉ. निरुपमा राय,** नमन प्रकाशन, ४२३१/१, अंसारी रोड, नयी दिल्ली-११०००२. मू. २०० रु.

भोरवेला (कहानी सं.) : **ज्योति जैन,** दिशा प्रकाशन, १३८/१६, त्रिनगर, नयी दिल्ली-११००३५. मू. १५० रु.

पानी-पानी (कहानी सं.) : **नीता श्रीवास्तव,** दिशा प्रकाशन, १३८/१६, त्रिनगर, नयी दिल्ली-११००३५. मू. १७० रु.

धरम धरे को दंड (कहानी सं.) : **देवेंद्र कुमार पाठक,** उद्भावना प्रकाशन, एच-५५, सेक्टर २३, गाजियाबाद. मू. १०० रु.

प्रतिध्वनि (ल. सं.) : **डॉ. पी.आर.वासुदेवन**, जी-४, अक्षय फ्लेट्स, आइस हॉउस, त्रिप्लीकेन, चैन्ने-६००००५, मू. १०० रु.

आखर-आखर मोल (गद्य) : **सं. हृदयेश मयंक**, नवांतर प्रकाशन, महावीर नगर, कांदिवली, मुंबई-४०००६७. मू. १५० रु.

छलकता गिलास (गद्य) : **दिलीप भाटिया**, बोधि प्रकाशन, रोड नं. ११, करतारपुर इंड. एरिया, जयपुर-३०२००६. मू. ५० रु.

चिंतन और अभिव्यक्ति (निबंध) : **प्रो. भागवतप्रसाद मिश्र,** बी-सनपावर फ्लैट्स, गुरुकुल रोड, अहमदाबाद-३८००५४. मू. ३०० रु.

कुछ दूर रेत पर चलकर (कविताएं) : **वरुण कुमार तिवारी**, नमन प्रकाशन, ४२३१/१, अंसारी रोड, नयी दिल्ली-११०००२. मू. १२५ रु.

दाक्षायणी (खंडकाव्य) : **मदनमोहन उपेंद्र**, सम्यक सृजन संस्थान, ए-१०, शांतिनगर, मथुरा-२८१००१ मू. ५० रु.

पुस्तक-समीक्षा

कुछ मीठे-खट्टे मुक्तक

✍ **राकेश शर्मा**

कुछ मिश्री, कुछ नीम (पुस्तक) : **श्री चंद्रसेन विराट**
प्रकाशक : समानांतर पब्लिकेशन, तराना, उज्जैन, पृष्ठ : १४४ **मू.** २५०/- रु.

छंद बद्ध हिंदी कविता के सुपरिरित हस्ताक्षर हैं श्री चंद्रसेन विराट. विराटजी के अब तक लगभग ५० ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं. ''कुछ मिश्री, कुछ नीम'' उनके ४११ मुक्तकों का सद्यः प्रकाशित संग्रह है. जिन्होंने उनके पिछले कविता संग्रहों को पढ़ा होगा वे इस संग्रह को पढ़कर यह ज़रूर कह सकेंगे कि कविताई के स्तर पर श्री विराट के विचार और अधिक परिपक्व हुए हैं. कविता के दार्शनिक पक्षों की ओर उनका कवि मन मुड़ा है. वे लिखते हैं- ''सबके सुख-दुखः प्रणीत करता है / वह अगीतों को गीत करता है / सिर्फ़ कवि है जो आदतन अपने / वक़्त से बातचीत करता है. इस संदर्भ में उनका एक और कथन देखिए- ''रंग फूलों से लिया है कवि ने/ शब्द के सुख को जिया है कवि ने / ख़ूब औरों का पचाया विष / तब थोड़ा पियूष पिया है कवि ने.'' कविता पर हर कवि और चिंतक ने अपनी-अपनी तरह से व्याख्याएं दी हैं. किसी ने विचार से इसे उपजते पाया है तो किसी ने हृदय की भाषा बताया, पर विराट लिखते हैं- ''कविता है शब्द का वितान नहीं / वह विचारों का आसमान नहीं / रस भरा भाव है हृदय का वह / बुद्धिमता भरा बयान नहीं.

छंदबद्ध और छंदमुक्त कविता की बहस बहुत पुरानी है. विराट जी की हर स्थिति में छंद के साथ खड़े रहे और आज भी खड़े हैं वे लिखते हैं- मूल में मन की उपज हो कविता / बुद्धि लाघव न महज हो कविता / कविता, कविता हो प्रथम भावमयी. ज्ञेय, संप्रेष्य, सहज हो कविता.'' कवि कर्म निरंतर वैचारिक संघर्ष का नाम है. कवि लिखता है. ''शब्द में ताप उतर आता है / जो कहा उसमें असर आता है / आते-आते ही कई बरसों में शेर/ कहने का हुनर आता है.'' इसी तरह एक और उदाहरण देखिए- ''देह की सिर्फ़ न / मन की पीड़ा / ठीक शब्दों में कहन की पीड़ा / जिसने भोगा है, वही समझेगा / कैसी होती है सृजन की पीड़ा.'' इसी भाव भूमि का एक और उदाहरण- ''शब्द के ताप घर में रहते हैं / दर्द आदर के साथ सहते हैं / छटपटाते हैं हम कई दिन तक / तब कहीं एक शेर कहते हैं.'' जीवन के विविध पक्षों पर कवि ने कलम चलायी है मौजूदा समय के पूरे दृष्य को कवि ने सामने रखा है. आज का बुद्धवादी अपने दोनों हाथों में लड्डू कैसे संभालता है इसका एक व्यंग्यात्मक उदाहरण देखिए- ''खाता पीता हूं. स्वस्थ रहता हूं / उच्च पद पर पदस्थ रहता हूं / बुद्धिवादी प्रबुद्ध हूं ऐसा/ निर्विवादित, तटस्थ रहता हूं.'' इसी भावभूमि-का एक और उदाहरण देखिए- ''श्रेष्ठता को कबाड़ करते हैं / सच से परदा लबाड़ करते हैं / पद पुरस्कार प्राप्त करने को / कैसी-कैसी जुगाड़ करते हैं.''

आज के समय में जब सब कुछ बाज़ार के हवाले हो तो ऐसे में कवि विराट लिखते हैं, ''राम अंधियारे में बिकाऊ है / दिन के उजियारे में बिकाऊ है / नीति, ईमान औ धर्म कला / क्या न बाज़ार में बिकाऊ है.'' और देखें-'' जुर्म की मार का तरीका है / क्रूर बाज़ार का तरीका है / बिकती है मौत की सुपारी / यह भी बाज़ार का तरीका.'' बाज़ार के क्रूरतम चेहरे पर कवि की एक और टिप्पणी देखें, ''देह व्यापार से बड़ा क्या है / वस्तु विस्तार से बड़ा क्या है / चीज़ें महंगी हैं, आदमी सस्ते / आज बाज़ार से बड़ा क्या है.'' बाज़ार वाद का एक और उदाहरण देखिए- ''कुछ तो दलाल बेच लेते हैं / साल दर साल बेच लेते हैं / महंगे विज्ञापनों से महंगे में. अपना हर माल बेच लेते हैं.'' बाज़ार ने आज़ाद नारी का झांसा देकर सबसे अधिक स्त्री देह को ही बेचा है. कवि विराट की दृष्टि से बाज़ार की यह चतुराई छिप न पायी और उन्होंने लिखा- ''ख़ूब धंधे में लगायी पूंजी / और पूंजी से बढ़ायी पूंजी / जिस्म औरत को उजागर करके / इश्तहारों से कमाई पूंजी.'' जनसंख्या सुरसा के बदन की तरह बढ़ती जा रही है कवि विराट का कवि मन लिखता है- ''भोग ही भोग न हो जाये कहीं / यह महारोग न हो जाये कहीं / डर है जीवन का ये रसमय उद्यम / शुष्क उद्योग न हो जाये कहीं.''

आज जनसंख्या बढ़ रही है पर आदमियों की संख्या निरंतर कम हो रही है. कवि की चिंता देखिए -

''ज़िंदा लोगों का सघन जंगल है / ज़िंदा रहना ही बड़ा कौशल है / जब शहर से न मेरा ख़त आये / तुम समझना कि कुशल मंगल है.'' शहर के आदमी का सच इन शब्दों में देखें - ''रोजमर्रा के सपने बुनता है / शहरी पैसे का गणित गुनता है / कूक कोयल की कहां शहरों में / चीख़ हॉर्नों की विवश सुनता है.'' विराट जी का जीवन अनुभव एक कवि के रूप में और एक मानव के रूप में बहुत व्यापक है. इन मुक्तकों में उनका अनुभव उतरा है. यह बहुत श्रमसाध्य और कौशल का काम है कि रचनाकार अपने अनुभवों, जीवन उद्देश्यों को कविता में व्यक्त कर पाये. जीवन की अनेक छटाएं इस पुस्तक में दर्ज़ हैं. पाठक को अपने जीवन की सच्चाई इन मुक्तकों में दिखाई पड़ती है. कवि कर्म तभी सार्थक होता है जब उसका वक्तव्य अधिकतम लोगों के अंतर्मन की आवाज़ बन कर बाहर आये. कवि विराट का यह कौशल इस पुस्तक में प्रकट हुआ है.

किसी पुस्तक के मूल्यांकन का सबसे बड़ा आधार यह माना जाता है कि कवि ने अपने समय के साथ न्याय किया है या नहीं. इस दृष्टि से कवि विराट की यह पुस्तक हमारे समय की व्रिदूपताओं को पूरी ताकत के साथ उजागर करती है. सहज भाषा में लिखी गयी यह पुस्तक पाठक को चिंतन के लिए विवश करती है. और कविता की शायद यही सबसे बड़ी उपादेयता है कि यह पाठक को चिंतन करने के लिए मजबूर करे और एक बेहतर आदमी बनाने का प्रयत्न करे. इस दृष्टि से कवि विराट का कवि कर्म इस पुस्तक में सफल सिद्ध होता है.

मानस निलयम, एम-२,
वीणा नगर, इंदौर- ४५२०१०

एक यथार्थ परक संग्रह

सतीश बिरथरे

सहर हुई तो (संग्रह) : **मंगला रामचंद्रन**
प्रकाशन : किताब घर प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली ११०००२. मू. : १५०/- रु.

हिंदी कहानियों में वह बात अरसे से नहीं आ पा रही थी जो सायास या अनायास मंगला रामचंद्रन के आठवें कहानी संग्रह 'सहर हुई तो'.... में दिखाई दी है नहीं तो अधिकांश संवाद स्त्री विमर्श और दलित चेतना जैसे विषयों पर आकर ठहर गया था. लेखिका ऐसे बेहद कामयाब लेखकों में हैं जिनकी यथार्थ पर मजबूत पकड़ है. ये सफल कहानियां और लघुकथाएं लीक से हटकर हैं और नये फलक छू लेने का सफल प्रयास हैं. ये कहानियां, लघुकथाएं जीवन के नये अर्थ तलाशती दिखाई पड़ती हैं. इनसे गुज़रते हुए बार-बार जीवन के उन रंगों से सरोकार बनता है जो सुखद और लुभावने हैं. मंगला जी ने छोटे-छोटे पात्रों, वस्तुओं और घटनाओं को आधार बना कर तेरह कहानियां और तेरह ही लघुकथाओं तथा जीवंत यात्रा वृंतात को १२८ पृष्ठों में संजोकर सुधि पाठकों से संवाद कराया है.

अपने इस कहानी संग्रह में बाल मनोविज्ञान, सामाजिक तथा वैयक्तिक मूल्यों की पड़ताल और दार्शनिक प्रश्नों को भी उन्होंने एक परिपक्व समझदारी के साथ रखा है...

'अनन्या । तुम सचमुच अनन्या हो' में यह संवाद- ''इला तुम बेफिक्र रहो, मैं लिंग परीक्षण करवाती ही नहीं हूं. तुम दोनों के अपनी संतान के प्रति जो विचार हैं वह जान कर अच्छा लगा.'' इसी प्रकार 'ममता की पुकार' कहानी में ''राधा जिस तरह सुधबुध खोकर व्यवहार कर रही थी- मुझे उसके शरीर पर गाय का दुखी स्वर में रंभाता चेहरा ही नज़र आ रहा था.'' इसी तरह कहानी 'सहर हुई तो' में ''समीर तो हमेशा गप या गीदड़ भमकी मानकर ध्यान ही नहीं देता पर बालक समर्थ रोने लगता, ''मम्मी आप चले गये तो मैं होमवर्क कैसे करूंगा ? रात को किसके पास सोऊंगा.''

अन्य सभी कहानियां 'जब रोशनी खिलखिलाई', 'जीवन की संध्या का उषाकाल', 'राजो पत्रम् पुष्पम् समर्पयामि' तथा 'अदृश्य सखा' ये सभी कहानियां पढ़ लेने के बाद पाठक के मन मस्तिष्क में टहलती रहती हैं. लेखिका का रचना संसार स्वयं में विस्तृत फलक समेटे हुए है. लेखिका द्वारा अपनी रचनाओं में संप्रेषणीयता सुगम कर देने से आकर्षक और आग्रह दोनों में वृद्धि की संभावना बढ़ जाती है. और इस कारण साहित्य में सूक्ष्म होती रचनाओं का पाठक वर्ग निरंतर बढ़ रहा है. ये सशक्त मन को भिगो देने वाली

रचनाएं हैं.

मंगला जी ने अपनी कहानियों में माननीय संबंधों को प्रमुखता प्रदान की है, साथ ही इन संबंधों के विभिन्न आयामों को पकड़ने, परखने तथा उससे उपजी भावनाओं को संवेदनात्मक स्तर पर बुनने के कारण उनकी कहानियों में एकरसता का बोझिल स्वर कहीं नहीं है.

कहानी संग्रह में लघुकथाएं भी तीखा व्यंग करती प्रतीत होती हैं, जैसे लघुकथा 'गेंद' में ''निशा ने सोचा उसे अगर गेंद मान भी लिया जाये तो वह ऐसी गेंद बनेगी जो अपनी मर्जी से उछल सके. दूसरों की बातों और लातों से नहीं?'' इसी प्रकार 'क्या यही प्यार है?' में लेखिका का दो टूक सोच कि ''समझ नहीं आता है कि एक दूसरे के पीछे दौड़ते हुए हाइड एंड सीक खेलते हैं, पर यह नहीं कहते कि 'आई लव यू' या तो उनका प्यार झूठा है या वे स्वयं ही तय नहीं कर पाते कि वास्तव में उन्हें एक दूसरे से प्यार है भी या नहीं ?''

निश्चय ही इन कहानियों और कथाओं में वर्तमान समय के संक्रमण का मूल्यान्वेषी स्वर भी मिलता है, नये मूल्यों की खोज उनमें जीवन के प्रति आस्था जगाती है. इन कहानियों में युगीन परंपरा का खंडन और बौद्धिकता बनाम आधुनिकता के साये में शिक्षित महानगरीय स्त्री के सोच को देखा-परखा जा सकता है. लेखिका परंपरा और सार्थक आधुनिकता दोनों ही छोरों को छूती हुई प्रतीत होती है. ''काया की माया'' एक असाधारण व्यंगात्मक कथा है जो नर के मन के नारी के प्रति मनोविकार को एक झटके में धराशायी कर देती है.

'सहर हुई तो' कहानी संग्रह का अंतिम पड़ाव यात्रा वृतांत भी रोचक प्रसंग है. इसमें लेखिका का ममतामयी स्वरूप उजागर हुआ है. एक रोचक यायावरी जो अपनी मिट्टी और जड़ों की तलाश कर पुलकित होता है. रामेश्वर, मदुरै, मीनाक्षी, योगी कपिल, नदियां-ताम्रवरुणी तथा तत्वधारा एंव शिवानंद मठ की मोहक यात्राएं लेखिका को गहरी अनुभूति प्रदान कर गयीं. गरबा करता गुजरात लेखिका का अंतिम पड़ाव था. अक्षरधाम, जूनागढ़, सोमनाथ, भालका तीर्थ तथा पोरबंदर और श्रीकृष्ण की द्वारिका. इस यात्रा वृतांत में लेखिका के प्रकृति के प्रति अटूट अनुराग का भाव था. इस सौंदर्य बोध के साथ ही इसमें मानवीय करुणा, अपने पराये की पीड़ा जैसे भाव बोध को विस्तार मिला. साथ ही अवचेतन मन की परछाइयों का रचनात्मक मिश्रण.

शब्दों का अपना महत्व है और शब्दों की वजह से ही बची हुई है यह दुनियां. देखिए लेखिका के मन का उज्जवल भाव... किसी व्यक्ति द्वारा आंखें दान करने का निर्णय उसकी मृत्यु के बाद पत्नी द्वारा जिस दृढ़ता से अपने पति की इच्छा पूरी करने की स्वीकृति का जो कारुणिक वातावरण प्रदर्शित किया है वह लेखिका की कलम की धारदार शक्ति है. भूमिका में उषा यादव जी ने सही कहा है कि मंगला जी की कथा-कहानियों में समकालीन जीवन का स्पंदन समाहित है. आज की इस भाग दौड़ भरी ज़िंदगी में कम पढ़कर भी अधिक चिंतन करने की दृष्टि से 'सहर हुई तो' संग्रहणीय है. इस संग्रह की कथा-कहानियों में शिल्प का लिबास पूरी तरह से चुस्त, दुरुस्त और आकर्षक है. निश्चय ही मंगला रामचंद्रन बधाई की पात्र हैं.

२०४ सच्चिदानंद नगर,
आर. टी. ओ. ऑफिस के पास,
लालबाग, इंदौर-४५२००९

'मां और परमात्मा का रास्ता एक है"

डॉ. पुरुषोत्तम दुबे

'लघुकथा संसार : मां के आसपास (लघुकथा संग्रह) : **प्रतापसिंह सोढ़ी**
प्रकाशक : पं. भवानी कश्यप, संस्थापक, गायत्री शक्तिपीठ, रवींद्र नगर, इंदौर (म.प्र.) **मू.:** १२०/- रु.

लघुकथाकार लघुकथा ही नहीं लिखे बल्कि लघुकथा विधा का इतिहास रचने का भी प्रयत्न करे, तो यह साहित्य की समृद्धि में उनका महती योगदान कहलायेगा. अपने देश के विभिन्न लघुकथाकारों की लघुकथाओं का संकलन यदि एक दृष्टि संपन्न लघुकथाकार करता है, तो ऐसा संकलन साहित्योतिहास की निधि बन जाता है. भारत देश के विख्यात

लघुकथाकार प्रतापसिंह सोढ़ी ने राष्ट्र के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में स्थापित लघुकथाओं की 'मां' पर केंद्रित लघुकथाओं का, एक लासानी संग्रह 'लघुकथा संसार... मां के आसपास' को संपादित कर हिंदी जगत में जो अदभुत इतिहास रचा है, वह स्तुत्य होकर हर भारतवासी के लिए संग्रहणीय है.

भारतीय मनीषा में वेदों से लेकर उपनिषद तक और आगे भी अद्यतन साहित्य में मां का वंदन-अभिनंदन लिखा मिलता है. विश्व-संस्कृति में मां कहीं भी प्रतिकार की दृष्टि से देखी नहीं गयी है. वह सदैव प्रातः स्मरणीय होकर चिर पूजित है.

वर्तमान में पाठकों की साहित्य के प्रति रुचि घटी है. भौतिक संकट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने भी इधर पाठकों से उनका समय छीन लिया है. एक प्रकार से पाठकों की अभिरुचि संकुचित-सी प्रतीत होने लगी है. पाठकों में उपजी पराधीनता के ऐसे संकट से श्रेष्ठ साहित्य ही मुक्ति दिला सकता है. अतीत में ऐसे जटिल अवसरों पर उम्दा लेखन विजयी हुआ है, इतिहास गवाह है.

लघुकथाकार प्रतापसिंह सोढ़ी द्वारा संपादित 'लघुकथा संसार : मां के आसपास' श्रेष्ठ साहित्य के प्रति युगीन-आग्रहों का कालजयी उत्तर है. कालजयी इसलिए कि इस ढंग की कृति को प्रस्तुत करने की सोच किसी एक विरले साहित्यकार में ही पैदा हो सकती है. मां, लगता है जैसे मां की स्थापित आवाज़ दी है.

हिंदी में लघुकथा लेखन का शताब्दी वर्ष बीत चुका है और ब्याज में इक्कीसवीं सदी का यह प्रथम दशक भी. इन एक सौ दस वर्षों में मां पर केंद्रित लघुकथाओं का कोई लिखित दस्तावेज़ सम्मुख नहीं आया है. फिर ऐसा भी संभव कैसे हो सकता है कि अकेला कोई एक लघुकथाकार अपनी समस्त लघुकथाएं मां से जुड़कर लिख दे. इसके उत्तर में सोढ़ी जी ने लघुकथा-सागर में गोता लगाया, एवज में उनको जहां कतिपय लघुकथाकारों द्वारा मां पर लिखी गयी लघुकथाएं मिलीं वहां ऐसे दुस्साहसी लघुकथाकार भी मिले जिनकी लेखनी का कमाल समझते हुए सोढ़ी जी ने उनसे उनकी अनुभूतियों के बल पर 'मां' पर लघुकथाएं लिखवायीं. इस संदर्भ में प्रस्तुत संकलन के संपादक सोढ़ी जी की दोहरी भूमिका दिखायी पड़ती है, पहली स्थापित लघुकथाकारों द्वारा लिखी गयी 'मां' आधारित लघुकथाओं की मांग करना तथा दूसरी नवागंतुक लघुकथा लेखकों से उनकी आधुनिक सोच के परिणामस्वरूप 'मां' संदर्भित लघुकथाएं लिखवाना. सोढ़ी जी का यही उपक्रम प्रस्तुत संग्रह में मां की अस्मिता का वैविध्य विश्लेषित कर सकने में उपयोगी सिद्ध हुआ है.

'मां' रिश्ता है, संजीवनी है, जीवन है, स्कूल है, छाया है, जिम्मेदारी है, तरकीब है, धर्म-कर्म है, भगवान है, मजहब है, राहत है, प्रेरक है, दृष्टि है, सभी कुछ मां है. मां सपनों में मिलती है, वसीयत में वर्णित है, दुःख के दिनों में साथी है, वह धोखा नहीं जानती, वह संवेदना का साकार रूप होकर मानव-समुदाय को एक बने रहने का आह्वान करती है. जहां 'मां' है, वहां आलोचना कदापि नहीं है. मां का चरित्रांकन अनगढ़ भाषा में भी हो, तो ऐसी भाषा भी स्मृहणीय है. मां को बखान करने में शिल्प यदि दुर्बल भी पड़ता हो, तो भी मां व्यवस्थित रूप से वर्णित है. 'मां' अभिव्यक्ति भी है और अनुभूति भी. 'मां' पर लिखा गया मां के प्रति प्रार्थना ही है. प्रार्थना में भाव सर्वोपरि होते हैं, भाषा नहीं. सोढ़ी जी ने मां पर केंद्रित लघुकथाओं के माध्यम से मां के सपूतों के लिए लिखित वरदान लुटाया है, अनहदनाद सुनाया है.

आलोच्य कृति में मां के चरित्र का महात्म्य जिस ऊंचाई के साथ संकलन के लघुकथाकारों ने उद्घाषित किया है वहीं आधुनिक जीवन शैली से भिज्ञ कतिपय लघुकथाकारों ने मां के चरित्र का अतिरेक भी प्रस्तुत किया है. लेकिन इसका तात्पर्य यह कतई नहीं कि मां के महत्व की अवहेलना की गयी हो, वर्तमान समय में मूल्यों के परिवर्तन के कारण ही ऐसा अनुबोध पैदा होता है. प्रबुद्ध पाठक ऐसी विपरीत स्थितियों में तार्किकता के आधार पर संबंधित लघुकथाओं में मां के औचित्य को लघुकथाओं में उपस्थित हुए कथ्य के आधार पर स्वीकार करेंगे.

७४ जे./ ए स्कीम न. ७१,
इंदौर-४५२००९

लघुकथाएं

बूढ़ी घोड़ी

✍ मंगला रामचंद्रन

लेखिका के रूप में उन्हें कभी-कभार फ़ोन आने लगे थे. उस दिन एक युवा अनजान आवाज़ थी.

'मैडम, आपकी फलां रचना फलां पत्रिका में पढ़ी और बहुत प्रभावित हुआ. आप और क्या-क्या लिखती हैं?' आदि कुछ प्रश्न पूछे जा रहे थे. शिष्टाचारवश दूसरी ओर से उसने पूछा- 'आप व्यस्त तो नहीं हैं, मैं आपसे और बातें करना चाहूंगा.'

उन्होंने बड़ी ख़ुशी से कहा- 'अपनी नन्हीं पोती को खाना खिला रही हूं वो हो जाये तो फिर यथेष्ट समय रहेगा.....'

दूसरी तरफ के फ़ोन का चोगा 'टक' से रखा गया था, दुबारा फ़ोन नहीं आया. लगा कि उस आवाज़ के मालिक ने सोचा होगा- 'बूढ़ी घोड़ी....'

✆ ४१/डी/डी/एस-३,स्कीम-७८,
अरण्य नगर, इंदौर-४५२०१०.

दुविधा

✍ ज्ञानदेव मुक्तेश

वह ग़रीब था. उसे कोई काम चाहिए था. वह कई ठेकेदारों के पास गया और उसने मजदूरी का काम मांगा. मगर ठेकेदारों ने उसे परे हटा दिया. ठेकेदारों ने कहा, 'भागो यहां से. तुम्हारे लिए कोई काम नहीं है.'

उसने घर-घर जाने का निश्चय किया. वह हर घर के दरवाज़े पर जाता और कोई भी छोटे या बड़े काम के लिए याचना करता. मगर सभी उसे धकियाते हुए अपने घरों से आगे भगा देते. धक्के खाते-खाते वह शहर के आख़िरी मकान तक आ गया. मगर उसे कोई काम नहीं मिला.

उसने इस युग में भी स्वाभिमान का रोग पाल रखा था. वह भीख मांगना नहीं चाहता था. मगर पेट की सिकुड़ती हुई आंतें उसके स्वाभिमान पर चोट कर रही थीं. आख़िर उसने अतंड़ियों के आगे हार मान ली. वह उन्हीं घरों के आगे जाकर भीख मांगने लगा. आश्चर्य कि उसे उन्हीं घरों से आसानी से भीख मिलने लगी, जिन्होंने उसे काम देने के नाम पर भला-बुरा कहकर घुड़क दिया था.

वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ था.

✆ द्वारा- श्री आई. एन. मल्लिक,
शिवाजी कॉलोनी, पूर्णिया-८५४३०१

आदत

✍ किशन लाल शर्मा

'झूठन खाओगे?' जैसे ही फटेहाल लड़का मेरे फेंके दोने पर लपका मैंने उसका हाथ पकड़ लिया.

'बाबूजी भूख लगी है.' फटेहाल लड़का बोला.

'तो झूठन क्यों खाते हो?' मैंने उसे दुकान से दो कचौड़ी खिला दीं. वह कचौड़ी खा चुका तो मैंने पूछा, 'क्या करते हो?'

'कुछ नहीं बाबूजी.'

'काम क्यों नहीं करते ?' काम करोगे तो लोगों के झूठे दोने नहीं चाटने पड़ेंगे.

'क्या काम करूं बाबूजी ?'

मैं उससे बात कर ही रहा था तभी एक कचरा बीनने वाला लड़का मेरे सामने से गुज़रा. उसे देखकर मैं बोला, 'इस लड़के को देखो. कचरे में से बोतलें, प्लास्टिक आदि चीज़ें बीनकर रोज पचास-सौ रुपये आराम से कमा लेता होगा.'

'लेकिन बाबूजी कचरे में से सामान बीनने के लिए गली-मोहल्लों के चक्कर लगाने पड़ेंगे और फिर उस सामान को बेचने के लिए कबाड़ी के पास जाना होगा.'

'यह तो करना पड़ेगा.'

'लेकिन, झूठन खाने के लिए मुझे कुछ नहीं करना पड़ता.'

फटेहाल लड़के की बात सुनकर मैं समझ गया उसकी आदत झूठन खाने की पड़ चुकी है.

✆ १०३, राम स्वरूप कॉलोनी,
आगरा-२८२०१०

परिशिष्ट

संस्कृति संरक्षण संस्था

संस्था के उद्देश्य प्राप्ति की दिशा में समय-समय पर अनेक कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं. २६ सितंबर २०१० को श्री सनातन धर्म विद्यालय, चेंबूर, मुंबई-४०००७४ में एक काव्य-सृजन प्रतियोगिता आयोजित की गयी जिसमें विभिन्न विद्यालयों के आठवीं-बारहवीं (क-वर्ग) और स्नातक व स्नातकोत्तर (ख-वर्ग) विद्यार्थियों ने भाग लिया. काव्य-सृजन के लिए प्रतियोगिता प्रारंभ होने से मात्र आधा घंटा पूर्व ही प्रतियोगियों को आठ-आठ विषय बताये गये जिसमें से उन्हें कोई एक विषय चुनना था. यहां पर कुछ चुनिंदा कविताओं को प्रस्तुत किया जा रहा है.

देश के सपूत

बरुन कुमार शुक्ला

उठो देश के लाल तुम्हें
धरती को स्वर्ग बनाना है ।
तुम्हें आंधियों के आंगन में,
दीपक आज जलाना है ।
पर्वत रोक रहे कदमों को,
शूल बिछे हैं राहों में।
ज्ञान कैद है इस धरती का,
अंधकार की बांहों में।
हर गांव तुम्हें चमकाना है ।। उठो.....
यहां फूट की फसलें होतीं,
बैर भाव की खेती।
जिसे देखकर भारत माता
आंखें भर-भर लेती।
तुम्हें पोछना है हर आंसू
रूठे हृदयों को मिलाना है ।। उठो...
नव युग का सूरज निकला है,
आज़ादी की धूप खिली ।।
नवजीवन की धुली चांदनी,
बांहें फैला आज मिली ।।
नये कदमों से बढ़ना है तुमको,
नयी दिशा को जाना है ।
उठो देश के लाल तुम्हें,
धरती को स्वर्ग बनाना है ।

स्वामी विवेकानंद कनिष्ठ महाविद्यालय,
कुर्ला, मुंबई-४०००२५.

प्यारा गांव

***गौरव गोसावी** (९वीं)*
(मातृभाषा : मराठी)

जहां सूरज की पहली किरणों से
जगता सारा गांव,
वही है प्यारा गांव, मेरा
वही है प्यारा गांव।।
जहां घर की खिड़की पर आ बैठा
कौवा करता कांव-कांव,
वही है प्यारा गांव, मेरा
वही है प्यारा गांव।।
जहां अतिथियों के स्वागत के लिए
रहती तत्पर नाव,
वही है प्यारा गांव, मेरा
वही है प्यारा गांव।।
जहां हम बच्चों को आम खिलाने
रहते मोहन राव,
वही है प्यारा गांव, मेरा
वही है प्यारा गांव।।
जहां आम के सुंदर वनों के भीतर
रहता है एक घुमाव,
वही है प्यारा गांव, मेरा
वही है प्यारा गांव।।
जहां सरल राह पर जाकर आगे
लगता है एक चढ़ाव
वही है प्यारा गांव मेरा,
वही है प्यारा गांव ।।

जहां अतिथियों से विदाई लेते,
रखकर मन में प्रसन्न भाव,
वही है प्यारा गांव मेरा,
वही है प्यारा गांव ।।
जहां निर्मल नदी में है नाचती,
पेड़ों की ठंडी छांव,
वही है प्यारा गांव, मेरा
वही है प्यारा गांव ।।

परमाणु ऊर्जा केंद्रीय विद्यालय-६,
अणुशक्ति नगर, मुंबई-४०००९४.

मेरा गांव

कंचन विश्वकर्मा

घूंघट में एक दुल्हन-सा
लगता है मेरा गांव।
हरियाली को देखकर ऐसा,
लगता है जैसे दुल्हन की,
धानी चुनरी हो उस रूप,
सज्जा को देख मन-ही में मन,
स्वर्ग के एक पावन रूप,
के दर्शन कर उठती हूं मैं,
पर आज मेरे इस गांव,
को किसकी नज़र लगी कि,
खेतों की हरियाली आपस,
का प्यार आज बदलते,
युग में लग रहा है पुराना,
आज मेरे इस गांव में कोई,
रहना नहीं चाहता,
कि कौन-सी चमक ने,
उनको लुभा लिया कि,
जिस मिट्टी में उन्होंने बचपन,
के वो खट्टे-मीठे पल गुज़ारे,
गुल्ली-डंडे, लट्टू के वो खेल,
आज वही कहते हैं नहीं,
है रोज़गार अरे क्या अपने माता-
पिता ने खेतों में नहीं बहाया,
है पसीना आज उसी गांव,
की मिट्टी से तुम इतने बड़े हुए हो,
ऐ मेरे-भाई बांधुओ लौट चलो,
अपने गांव, उस नदी,
उन पहाड़ों-झरनों की,
कलकलाहट तुम्हें पुकारे,
पेड़ों की पत्तियां एक मधुर तान सुनायें,
मेलों में लगी चाट मिठाई,
की दुकानें तुम्हें पुकारें,
वो प्यारे चलो अपने गांव,
चलो अपने गांव, चलो अपने गांव।

श्री सनातन धर्म विद्यालय,
चेंबूर, मुंबई-४०००७४.

मेरी सहेली

श्राव्या जंध्याला (९वीं)
(मातृभाषा : कन्नड़)

जब मैं मुसीबत में फंस जाती हूं,
तुम ही मुझे बचाती हो।
अगर मैं परेशानी में हूं,
तुम ही वह हो जो उसे सुलझाती हो
जब मैं उदास हो जाती हूं,
तुम ही मुझे हंसाती हो।
अगर मैं गुस्से में हूं,
तुम ही मुझे समझाती हो।
हर अच्छे और बुरे समय में
हर दिन, हर मिनट, हर पल
जब भी मैं चाहूं
तुमने मेरा साथ दिया है।
तुम हो सबसे अच्छी, सबसे प्यारी
हो एक बड़ी पहेली!
तुम करोड़ों में एक हो
क्योंकि तुम मेरी सहेली हो।

स्वामी विवेकानंद हाई स्कूल,
चेंबूर, मुंबई-४०००७१.

दहशतगर्द

✍ **विघ्नेश वैद्यनाथन** (९वीं)

(मातृभाषा : तमिल)

ओसामा आतंकवादियों का राजा है,
जीवन उसका आतंकवाद फैलाना है।

हाथ लगाओगे तो मार देता है,
उसके साथ काम करोगे तो आपको अपने साथ शामिल करता है।

आतंकवादियों को प्रकट करना उसका काम,
सबको मार डालना उसकी आशा।

अपनी आशा को पूरी करता है,
पर लोग उसे मार नहीं पाते हैं।

वह किधर है, यह कोई नहीं जानता,
क्योंकि ग़ायब होना उसकी कला है।

करता है देश-विदेशियों पर हमला,
पूरी होती है उसकी मनोकामना।

अमेरिका उसे खोजता-खोजता थक गया,
फिर भी वह बैठे-बैठे हमला करता है।

सच्ची में यह आतंकवादियों का राजा है,
हमला होने पर भारत के वीर उसे मार देते हैं।

जनरल एज्युकेशन एकेडमी,
चेंबूर, मुंबई-४०००७१.

निवेदन

इस अंक के साथ जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त हो रहा है उनसे निवेदन है कि शीघ्र ही अपने ग्राहक शुल्क का नवीनीकरण करा लें.

-संपादक

महिला-रचनाकार : अपने आइने में

("कथाबिंब" के "आमने-सामने" स्तंभ में प्रकाशित सभी महिला-रचनाकारों के आत्मकथ्यों का संकलन.)

संपादक : डॉ. अरविंद

संपर्क :
मानव प्रकाशन
१३१, चित्तरंजन एवेन्यू,
प्रथम तल, कोलकाता-७०० ०७३
मूल्य : २५० रु.

शुभकामनाओं सहित

बजरंग क्लॉथ स्टोर

आदित्यपुर, झारखंड

"कमलेश्वर-स्मृति कथाबिंब कथा पुरस्कार-२०१०"

अभिमत-पत्र

वर्ष २०१० के सभी अंकों में प्रकाशित कहानियों के शीर्षक, रचनाकारों के नाम के साथ नीचे दिये गये हैं. पाठक अपनी पसंद का क्रम (१,२,३,...७,८) सामने के खाने में लिखकर हमें भेजें. आप चाहें तो इस **अभिमत-पत्र** का प्रयोग करें अथवा मात्र आठ कहानियों का क्रम अलग से **एक पोस्टकार्ड** पर लिख कर भेज सकते हैं. प्राप्त अभिमतों के आधार पर पिछले वर्षों की तरह ही सर्वश्रेष्ठ कहानी (१००० रु. - एक), श्रेष्ठ कहानी (७५० रु. - दो) तथा उत्तम कहानी (५०० रु. के पांच) पुरस्कार घोषित किये जायेंगे. जिन पाठकों की भेजी क्रमवार सूची अंतिम सूची से मेल खायेगी उन्हें **कथाबिंब** की **त्रैवार्षिक सदस्यता (१२५ रु.)** प्रदान की जायेगी. **कथाबिंब** ही देश की एकमात्र पत्रिका है जिसने इस तरह का लोकतांत्रिक आयोजन प्रारंभ किया हुआ है. इसकी सफलता इसी में है कि ज़्यादा से ज़्यादा पाठक अपना निष्पक्ष मत व्यक्त करें. पाठकों का सहयोग ही हमारा मुख्य संबल है.

कहानी शीर्षक / रचनाकार	**आपका क्रम**
१. **वह कल नहीं आयेगा** - ज्ञान वर्मा	
२. **वादियों का दर्द** - डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम'	
३. **समर्पण** - जसविंदर शर्मा	
४. **खिसकते विराम पर इंतज़ार** - अमर स्नेह	
५. **मुन्नी** (तेलुगु कहानी) - के. वरलक्ष्मी	
६. **वह चुप हैं** - डॉ. रूपसिंह चंदेल	
७. **एक और एकलव्य** - पुन्नीसिंह	
८. **इज़्ज़त के रखवाले** - डॉ. पद्मा शर्मा	
९. **एक डॉक्टर की मौत** - डॉ. प्रदीप अग्रवाल	
१०. **मंथन** - डॉ. विवेक द्विवेदी	
११. **फंदा क्यों ... ?** - डॉ. सुधा ओम ढींगरा	
१२. **'पिताजी चिंता न करें !'** - चंद्रमोहन प्रधान	
१३. **चूल्हे की रोटी** - सुरेंद्र अंचल	
१४. **'सइयां निकस गये...'** - डॉ. वासुदेव	
१५. **सरहद के पार** - डॉ. संदीप अवस्थी	
१६. **नील पाखी** - डॉ. अनुज प्रभात	
१७. **एक परिचय, अंतहीन** - डॉ. सतीश दुबे	
१८. **कर्ज-वसूली** - रमेश यादव	
१९. **'जन्म दिन मुबारक !'** - डॉ. इला प्रसाद	
२०. **पांचवी कथा**- डॉ. निरुपमा राय	